UNIVERSAL LIBRARY
OU_182501
UNIVERSAL LIBRARY

मुसाहिब जू

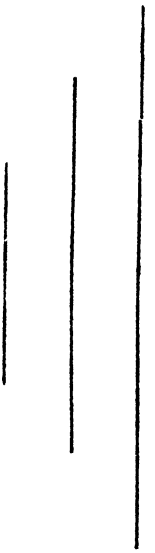

श्रीवृन्दावनलाल वर्मा

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 | V31 Mu Accession No. G.H 198

Author वर्मा, वृन्दावनलाल ।

Title मुसाहिब जू । 1946

This book should be returned on or before the date last marked below.

लेखक की अन्य रचनाएं

१—गढ़कुण्डार
२—विराटा की पद्मिनी
३—लगन
४—प्रत्यागत
५—कुंडलीचक्र
६—प्रेम की भेंट
७—सङ्गम
८—हृदय की हिलोर
९—धीरे धीरे
१०—कभी न कभी

प्रेस में:—

११—झांसी की रानी लक्ष्मीबाई
१२—मङ्गलसूत्र
१३—राखी की लाज
१४ पायल
१५—हंस मयूर
१६—कचनार
१७—कलाकार का दण्ड
१८—शबनम

मुद्रक—अयोध्याप्रसाद शर्मा स्वाधीन प्रेस, झाँसी ।

— १ —

चिड़ियाँ चुप थीं। झींगुर झंकार रहे थे। तड़का नहीं हुआ था। सायँ-सायँ चलने के बाद हवा मन्द पड़ गई थी और उसमें कुछ ठंडक भी आ गई थी। मनुष्यों का एक झुण्ड सुलगते हुए बोंड़ोंवाली बन्दूकें लिए उस टीलेदार बीहड़ वन में चुपचाप चला जा रहा था। कभी-कभी ये लोग एकाएक ठहर कर आहट ले लेते और फिर सपाटे के साथ चल देते थे। गिनती के २०-२५ आदमी होंगे।

सघन वृक्षों से ढँकी हुई एक छोटी-सी पहाड़ी पर चढ़ने के उपरान्त ये लोग अलग-अलग ऊँची-नीची टोरों पर छिप कर जा बैठे। एक टोर पर दो मनुष्य एक साथ थे। एक के पास बन्दूक थी और दूसरे के पास म्यान में बन्द तलवार।

धीरे-धीरे भोर हुआ। पूर्व दिशा के प्रतिक्षण बदलने वाले रङ्गों की ओर इन लोगों का ध्यान न था। इनकी गड़ी आखें वृक्षों के एक झुरमुट के तले प्रभाप्रच्छन्न अन्धकार में कुछ टटोल रही थीं। यह स्थान उस टोर के नीचे निकट ही था, जहाँ ये दो मनुष्य जा बैठे थे। आधी घड़ी पश्चात् दो आकार उस अन्धकार की ओर रेंगते हुये दिखाई पड़े। उन दो मनुष्यों में से एक ने बिलकुल दबे हुये स्वर में कहा—'काकाजू, तेंदुओं की जोड़ी है।'

दूसरे ने भी देख लिया था। सङ्केत में उत्तर दिया। तेंदुओं को सन्देह हो गया। वे वहीं दब कर बारीकी के साथ टोह लेने लगे। रह-रह कर सिमटे। इन दोनों मनुष्यों ने साँस साधी।

इतने में और प्रकाश हुआ। झुरमुट के तले का अन्धेरा और खण्डित हुआ। तेंदुओं के आकार स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे। उनकी चुल भी दिखलाई पड़ी। एक अदृश्य हो गया।

जिस मनुष्य को कुछ देर पहले 'काकाजू' शब्द से सम्बोधन किया गया था, उसने रञ्जक को तोड़ से छुला दिया। रञ्जक फुर्र-फुर्र हुई और फिर ज़ोर का धड़ाका हुआ। उस धड़ाके के साथ ही एक चीत्कारमय गर्जन सुनाई पड़ा; परन्तु उस क्षण बारूद के धुएँ के कारण कुछ स्पष्ट न दिखलाई पड़ सका। उसी समय बन्दूक़ चलाने वाले अपने सार्थी से दूसरे ने ज़रा ज़ोर से प्रफुल्ल स्वर में कहा—'काकाजू, तेंदुआ अवश्य मारा गया।' वाक्य समाप्त ही हो पाया था कि लोहू-लुहान तेंदुआ छलांग भर कर काकाजू-सम्बोधित व्यक्ति की छाती पर आ चढ़ा। छिपाव के स्थानों पर इधर-उधर जो लोग बैठे हुये थे, उनमें से 'अरे'

निकला और कोई-कोई अपनी ही घबराहट के कारण हथियार समेत नीचे की ओर लुढ़क गए !

तेंदुए के पिछले पञ्जे चट्टान पर थे। एक पञ्जा बन्दूक चलाने वाले व्यक्ति के कन्धे पर पहुँच गया था और दूसरा हवा में तुला हुआ सा था। उस पञ्जे के बड़े-बड़े नाखून निकले हुये थे। सिर पर बँधे हुए साफ़े में वे नाखून धँस गए। साफ़ा हिला और खिसका। तेंदुआ अपने प्रबल आक्रमण के धक्के को न सँभाल सका। उसी चट्टान पर ज़रा फिसल कर तिरछा हुआ, सँभला और दूसरे आक्रमण के लिये दुगुने वेग के साथ तैयार हुआ।

तुरन्त दूसरे व्यक्ति ने फुर्ती से तलवार निकाल कर ज़ोर का हाथ तेंदुए की गर्दन और छाती के बीच में भर दिया। वार कसा हुआ था; परन्तु तुरन्त घात का काम न दे सका। तेंदुए का पिछला धड़ चट्टान के नीचे की ओर फिसल कर रुक गया और सिर तलवार चलाने वाले शिकारी की जाँघ पर जा अटका। साथ ही पैने दांत जाँघ में जा घुसे।

'वाह पूरन ! वाह !'– बन्दूक चलाने वाले ने कहा—'कैसा बढ़िया हाथ किया है।'

पूरन ने इस प्रशंसा की ओर ध्यान न देकर आहत तेंदुए को अपनी जाँघ पर से धकेल कर नीचे गिरा देने का प्रयत्न किया। मांस में दाँत अँटे हुये थे। अलग न कर पाया। पीड़ा हुई। तेंदुए के मुँह का लोहू पूरन की जाँघ के रक्त के साथ मिश्रित हो कर बहने लगा। पूरन ज़रा घबराया, कराहा। पूरन का साथी उसकी पीड़ा का ठीक-ठीक कारण न समझ पाया और बग़ल में

पड़ी हुई बन्दूक को फिर से भरने के लिए जल्दी से उठाया कि पूरन कष्टपूर्ण स्वर में बोला –'काकाजू, इसने मरते-मरते मेरी जाँघ चबा डाली है।'

बन्दूक अलग रख कर वह व्यक्ति तेंदुए के दाँतों को पूरन की जाँघ से छुड़ाने का उपाय करने लगा। बलिष्ट होते हुये भी वह व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति का उपयोग न कर सका। चिल्लाकर बोला—'क्या सब मर गए? चलो, इधर।'

सबसे पहले एक बुड्ढा आया। हिम-सदृश श्वेत दाढ़ी थी। उसके दोनों सिरे कानों पर लिपटे हुए थे। लम्बी, छरहरी देह। बन्दूक हाथ में और तलवार बग़ल में। यह पूरन का दादा था।

'राजा, आप ठहरो', बुड्ढा बोला—'मांस में दाँत धँस गए हैं, मैं निकालता हूं।'

बुड्ढे ने दोनों पैर पूरन की जाँघ में अड़ाकर हाथों के पूरे बल से तेंदुए के दाँत जाँघ से छुड़ा लिये। जाँघ का बहुत-सा भाग बँधी हुई दाढ़ों में बिंधा चला आया।

'रमू कक्का, आज मेरे प्राण पूरन ने बचाये हैं। मैं सोचता हूं कि क्या देकर मैं इसके प्राण बचाऊँ।'

'चिन्ता न की जावे, राजा', बुड्ढे रमूने काँपते हुए स्वर में कहा –'अपने साथ मरहम-पट्टी का सामान है।'

थोड़े क्षण उपरान्त और शिकारी भी आ गए। कुछ लोग तेंदुए के मारे जाने पर बधाई देने लगे, कुछ ज़रा दूरी से पूरन के घाव और मृत तेंदुए के सिर को देखने लगे। उन लोगों के इस

भाव में उदासीनता का आभास पा कर पूरन के बन्दूक चलाने वाले उस साथी ने आँख तरेरी और करारे स्वर में कहा—'तुरन्त मरहम-पट्टी करो।'

रमू बोला—'आप कोई न छुओ। मुझको मरहम और पट्टी दे दो। मैं अभी बाँधे देता हूँ।'

'ठहरो। मैं इस काम को अच्छा जानता हूँ।'—काकाजू ने कहा।

— २ —

तेंदुए पर बन्दूक चलाने वाले और मरहम-पट्टी का दृढ़ प्रस्ताव करने वाले दतिया राज्या-तर्गत केरुआ के जागीरदार, जो ग्वालियर राज्य में है, मुसाहिब दलीपसिंह थे और रमू तथा पूरन जाति के मेहतर और मुसाहिब के सैनिक थे।

अठारहवीं शताब्दी का अन्त हो गया था। भारतवर्ष में दूरवर्ती पश्चिम से आई हुई एक नई जाति द्वारा नई राजनीतिक संस्था स्थापित होती चली जा रही थी। बुन्देलखण्ड के रजवाड़ों के ऊपर सन्धियों के बन्धन पड़ चुके थे। नई संस्था की नई प्रणाली से बुन्देलखण्ड, अन्य प्रान्तों की तरह, सम्मोहित और संप्रभावित हो चुका था; परन्तु उसकी जकड़ में इतनी कठोरता नहीं आई थी कि परम्परायें और स्थानिक रीतियाँ स्मारकों के उत्सव-मात्र रह जायँ और जीने मरने की स्वाधीनता का उच्छ्वास निरोध के दबोचने वाले संयम में कस जाय।

दतिया की परम्परागत अनियमित सेना में उस समय कई सहस्र सैनिक थे। केरुआ के मुसाहिब दलीपसिंह को बारह सौ योद्धा रखने का अदेश था। इसी प्रयोजन से उनको बारह सहस्र रुपया वार्षिक आय की जागीर में सेंहुड़े के पास चिरूली इत्यादि आठ गाँव मिले हुये थे। इन बारह सौ सैनिकों में से लगभग आधे मुसाहिब के पास आते-जाते बने रहते थे, बाक़ी छः सौ के विषय में विश्वास था कि अटक पड़ने पर कहीं से बुला लिए जायँगे। पूरे बारह सौ दशहरे के दरबार के दिन भी हाज़िरी

देने न आते थे; परन्तु भीड़-भाड़ को देखकर बारह सौ का अनुमान कल्पनाशक्ति द्वारा कर लिया जाता था। क़िले में रखी हुई तोपें, जिनको श्रीवास्तव ने ढाला था और जिन पर उसका नाम खुदा या ढला हुआ था, कल्पना में प्रत्येक टुकड़ी की चीज़ समझी जाती थी। थोड़े वर्षों पहले इन टुकड़ियों ने इन्हीं तोपों का प्रयोग दिल्ली के मुग़लों की हरावल में दक्षिण और उत्तर में किया था। परन्तु अब वे किसी सम्भव घटनासम्पात के केवल सम्भावनीय प्रयोग की साधन रह गई थीं और अब इन तोपों का गर्व इन टुकड़ियों को अंग्रेज़ी तोपों के सामने उतना नहीं रहा था। युद्ध की शैली परम्परा में परिणित हो चुकी थी। नई सूझ बूझ के लिये कोई स्थान न रहा था। और यह परम्परा भी पारस्परिक बखेड़ों के समय जात-पाँत का अभिमान प्रकट करने के लिए ही अधिक उपयोग में आने लगी थी। युद्ध और योद्धा के नाम की लकीर पीटी जाने लगी थी। किसी सैनिक को थोड़ी सी भूमि और किसी को एक-एक दो-दो रुपए मासिक वेतन मिलता था। यह भी महीनों बक़ाया में पड़ा रहता था और कभी कभी बक़ाया बिना दिए-लिए ही साफ़ भी हो जाया करता था।

परन्तु मुसाहिब दलीपसिंह का नियम था कि जब कभी जितने सैनिक उनके घर पर आ जाते, वे उनको भोजन कराते। भोजन के लिए दो-चार घण्टे का विलम्ब भले ही हो जाय; परंतु कराया अवश्य जाता था।

इन्हीं सैनिकों में से मुसाहिब का एक शिकारी-दल भी था। यों तो उनकी सेना में सभी जातियों और वर्गों के मनुष्य थे; परंतु

शिकारी-दल में मेहतर अधिक थे। दलीपसिंह उदार थे, शिथिल थे, हठी थे, सहज विश्वासी और सहसाप्रवर्ती। छुआछूत के दम्भ को वे न मानते थे। इसीलिये उनके सैनिकों तथा अनुयायियों में छुआछूत का भेद-भाव बहुत न था।

मुसाहिब दलीपसिंह ने बिना किसी संकोच के कहा—'नहीं, तुम रहने दो। इस काम को मैं करूँगा।' और उन्होंने अपने बहुमूल्य साफे में से एक टुकड़ा पट्टी के लिये फाड़ डाला। तब और लोग जुट पड़े। थोड़े से पलों में पट्टी बँध गई। पूरन की शूरता की सराहना करने के बाद शिकारी तेंदुए की भीम काया और उसके रङ्ग के सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगे। तब बुड्ढा रमू पूरन से बोला—'अच्छा बहुत अच्छा हाथ कसा बेटा! पर राजा के निमक से कभी उऋण होओगे या नहीं इसमें सन्देह है।'

'बब्बा', पूरन ने बिना कोई कष्ट प्रकट किये हुए कहा—'म्यान में न पड़ी होती तलवार, तो तेंदुए को मचान के पास आने के पहले ही वहाँ का वहीं कतर कर फेंक देता।'

'क्या!' रमू चिल्लाकर बोला,—'मुसाहिबजू के साथ बैठा शिकार खेलने और तलवार को म्यान में बन्द करके! तूने आज हमारे पुरखों की डुबोई होती।'

बेचारा पूरन सकपका गया।

दलीपसिंह ने कहा—'इतनी सफाई के साथ कोई बन्दूक भी नहीं चला सकता था, जितनी सफाई के साथ पूरन ने तलवार चलाई।'

'परन्तु', सधे हुए गले से रमू बोला - 'ऐसे शिकार में इतनी असावधानी करने के कारण इसको दो लातें अवश्य लगनी चाहिये।'

पूरन मुस्कराने लगा और लोग फिर उसकी प्रशंसा करने लगे। मुसाहिबजू ने अपने गले का गुंज उतारा और पूरन को पहना दिया। पूरन ने निषेध भी किया; पर वे न माने। गुंज खरे सोने का था और उसमें कुछ जवाहर भी थे।

रमू की आँखों में आँसू आ गए। बोला—'यह क्या किया राजा ? इस तुच्छ सेवा के लिये इतना बड़ा पुरस्कार !'

'यह तो कुछ भी नहीं है', मुसाहिब ने उत्तर दिया, और पूरन को छाती से लगा कर बोले—'आज से यह मेरे बेटे के बराबर हुआ।'

'सो तो वह और हम सब आपके हैं ही।' रमू ने रोते-रोते कहा - 'परन्तु यह क्या किया ! छाती से लगा लिया ! क्या किया यह !'

उसी मण्डली में रामसिंह धंधेरा नामक शिकारी भी था। यह कुम्हर्रा का निवासी था। मुसाहिब का दूर के नाते में साला होता था। बोला—'तभी तो समय पड़ने पर पूरन इसी छाती पर गोली भी तो लेगा।'

रमू गला साफ़ कर बोला—'सो तो राजा, वैसे भी अपने स्वामी के लिये छाती पर गोला-गोली ओढ़ लेनेका हमारा धर्म है।'

रामसिंह ने कहा—'रमू कक्का, सिपाही को लात मारना धर्म में नहीं है !'

— ३ —

वहीं जङ्गल में एक छोटा-सा गाँव था। गाँव तक कन्धों पर और वहाँ से दतिया खटिया पर पूरन को सावधानी के साथ ले आये। दतिया में दलीपसिंह का डेरा भरतगढ़ फाटक से लगा हुआ था। डेरे तक आते-आते तीसरा पहर होने को आ गया। कड़ी धूप थी और तेज़ लू। उतरता जेठ होने पर भी मेह की एक बूँद न पड़ी थी। सब-के-सब भूखे और प्यासे थे। परन्तु मुसाहिब के डेरे पर इतने मनुष्यों के खिलाने लायक भोजन-सामग्री न थी, और उनका प्रण था कि जब तक अपने संगियों में से एक भी भूखा रहेगा, तब तक स्वयं अन्न ग्रहण न करेंगे।

उनकी पत्नी चरखारी के राजा की बेटी थीं। वे भी उतनी ही उदार थीं। अटक पड़ने पर अनेक बार उन्होंने मुसाहिब को अपने बहुमूल्य अभूषण दे दिये थे। कई बार ऐसा करने के कारण उनके पास बहुत थोड़े आभूषण बचे थे। मुसाहिब के सैनिक भी इस बात को जानते थे और उनमें से कई तो कभी कभी इस बात की चिन्ता में पड़ जाया करते थे कि मुसाहिब-पत्नी के उपकारों का बदला कैसे चुकाया जाय। खाद्य-सामग्री की कमी के कारण वे उस दिन फिर चिन्तामें पड़ीं। उन्होंने सोचा, 'संध्या तक कुछ-न-कुछ प्रबन्ध हो जायगा। इस समय शर्बत से काम चलाती हूँ।'

रानी ने रसोइनों से शर्बत बनाने को कहा। खाँड़ की खोज हुई। भाँड़े में केवल इतनी निकली, जितनी से मुसाहिब का और

तीन-चार मनुष्यों का काम चल पाता। रसोइनों से खिसिया कर कहा – 'कहाँ गई ? कल तो बहुत रखी थी !'

एक रसोइन ने बिना बुरा माने हुए उत्तर दिया—'खर्च क्या कुछ कम है ?'

'अच्छा, एक पान बना लाओ', मुसाहिब-पत्नी ने कहा 'तब तक मैं कुछ उपाय करती हूं।'

रसोइन बीड़ा बनाने लगी। मुसाहिब-पत्नी, जो 'चरखारी-वाली सरकार' कहलाती थीं, आरसी में अपना मुंह देखने लगीं। मुँह उतरा हुआ था। उन्होंने तुरन्त मुस्कराने की चेष्टा की। मनमें कहा, 'ज़रा पानी मिला देने से काम चल जायगा'। वे इस बात को प्रस्ताव का रूप देने वाली ही थीं कि फिर गम्भीर हो गईं। बोलीं—'बड़ी देर लगाई ज़रा सा पान बनाने में।'

'लाई तो।'—रसोइन ने व्यग्रता का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुए कहा।

चरखारी वाली ने सोचा, बहुत पानी मिला देने से थोड़ी सी खाँड़ का भी स्वाद फीका पड़ जायगा। रसोइन से कहा—'अच्छा, ठण्डा पानी घर में है कि वह भी नहीं है ?'

'जाड़ों में पकाए मटकों में हिम-सा ठण्डा पानी भरा है', सुपारी पर सरौता चलाते हुये रसोइन बोली—'ऐसा ठण्डा कि छूने से कँपकँपी लग जाय।'

क्षीण मुस्कराहट के साथ उन्होंने सन्देहपूर्ण स्वर में पूछा—'गुड़ तो कदाचित् होगा ही नहीं ?'

'गुड़ के शर्बत से तो ठण्डा पानी ही अच्छा।' रसोइन ने विवेकपूर्ण दृष्टि के साथ उत्तर दिया।

अपने को निस्सहाय समझकर चरखारी वाली ने एक सांस ली और मन में प्रश्न किया, 'न-जाने क्यों इतनी कड़ी गर्मी में शिकार खेलते हैं?' रसोइन से बोलीं 'शिकार खेलना तो सरदारों का काम ही है; परन्तु जरा पानी पड़ जाय, तब बाहर जाया करें, तो अच्छा हो।'

रसोइन ने कोई जवाब नहीं दिया। पान देकर जरा हिचकिचाहट के साथ कहा - 'कितने लोगों के लिये रसोई होगी? हम लोगों को अभी से तैयारी करनी पड़ेगी, तब कहीं रात गये खाना बन पायेगा।'

चरखारी वाली ने पान चबाते चबाते धीरे स्वर में कहा— 'मुसाहिबजू को शर्बत भिजवा दो और अन्य लोगों के लिये ठण्डा जल। समझी न!'

रसोइन ने पहले से ही समझ रखा था; परन्तु अपनी समस्या को हल न होते देखकर जरा खीझ कर स्वामिनी की आज्ञा का पालन करने चली गई। इस बीच चरखारी वाली भण्डार में गईं। वहाँ देखा, तो रसोई की सामग्री पूरी नहीं थी। कहीं रसोइनें घबराहट को न परख लें, इसीलिये वे तुरन्त भंडार में से निकल आईं और ठण्डे पानी से हाथ पैर धोने लगीं।

थोडी देर में उस रसोइन ने आकर कहा - 'भिजवा दिया।'

— ४ —

पूरन को मुसाहिबजू ने अपनी ड्योढ़ी के एक कोने में लिटा दिया। पंखा झलने के लिए उन्होंने लल्ली नामक अपने एक लोधी सैनिक को आज्ञा दी। वह पँखा झलने लगा। नाई मुसाहिबजू के लिए हुक्का भरने को गया। इतने में बाहर रमू आ गया। उसने झपटकर लल्ली के हाथ से पँखा छीन लिया। बोला—'यह क़ायदे के ख़िलाफ़ है।'

मुसाहिबजू के हठ करने पर भी रमू नहीं माना। इतने में नाई हुक्का लेकर आ गया। मुसाहिबजू रमू के सामने हुक्का नहीं पीते थे। वह उनके पिता का साथी था और उसको मुसाहिबजू 'रमू कक्का' कहकर पुकारते थे। नाई भी इस बात को जानता था, इसलिए उसने हुक्का एक तरफ़ रख लिया। रमू ने देख लिया। पूरन के बिस्तरे पर पँखा रखकर रमू वहाँ से चल दिया। कहता गया—'राजा, मैं घर तक हो आऊँ।'

उसके चले जाने पर लल्ली ने फिर पँखा झलना आरम्भ कर दिया। मुसाहिबजू हुक्का पीने लगे। एक नौकर शर्बत, पानी के घड़े, लोटे और कटोरे ले आया। मुसाहिबजू ने हुक्का अलग रख दिया। प्यासे थे, उत्सुक दृष्टि से जल-पात्रों की ओर देखने लगे। शर्बत एक छोटे-से लोटे में था और पानी घड़े में। जैसे ही पानी पिलाने वाले ने शर्बत का लोटा उनकी ओर बढ़ाया, वह बोले—'पहले पूरन को।'

पानीवाला शर्बत के लोटे को एक ओर रखकर ठण्डे पानी के घड़े और लोटे को पूरन की ओर ले गया। घड़ा तो उसने एक ऊँचे स्थान पर रख दिया। लोटे से पानी ढालकर प्यासे पूरन को पिलाया। उसी समय एक सैनिक शर्बत का लोटा और कटोरा मुसाहिबजू के पास ले गया। कटोरे से मुसाहिबजू शर्बत का पूरा लोटा खाली कर गए। फिर हुक्का सामने रख कर पूरन से पूछा—'खूब मीठा है, पूरन ?'

'मीठा, काकाजू !'—पूरन ने ज़रा आश्चर्य के साथ कहा। फिर तुरन्त सहज स्वर में बोला—'बहुत ठीक है, काकाजू !'

मुसाहिबजू हुक्का पीने लगे और दूसरे लोग पानी। लल्ली ने भी पिया। पानी पिलाने वाले से कुछ दिल्लगी में, कुछ रिसियाना सा, बोला—'हमें कोरा पानी ! कब की कसर निकाली है ?'

मुसाहिबजू का ध्यान आकृष्ट हुआ। पूरन ने अज्ञेय संकेत में लल्ली से कहा—'तुम्हें न जाने क्या बान पड़ी है।'

'क्या है पूरन ?' —मुसाहिबजू ने लापरवाही के साथ पूछा।

'कुछ नहीं।'—पूरन ने विश्वास दिलाते हुए उत्तर दिया।

लल्ली ने मुँह फेर लिया। मुसाहिबजू को सन्देह हुआ। हुक्के की निगाली हाथ में पकड़े हुए वह बोले—'क्यों जी, लल्ली को शर्बत नहीं दिया ?'

नौकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह दूसरे लोगों को पानी पिलाने लगा।

'क्या बात है ?'—मुसाहिबजू ने ज़रा जोर के साथ प्रश्न किया।

एक सैनिक ने पानी पीते-पीते कहा – शर्बत नहीं है, पानी है, दाउजू !'

'क्यों रे ?'—मुसाहिबजू ने उत्तेजित होकर पूछा।

'मैं क्या करता ?'—नौकर ने मुँह फेर कर उत्तर दिया।

मुसाहिबजू ने हुक्का सामने से हटा दिया। मूँछ पर हाथ फेरकर कुछ सोचने लगे। एक क्षण बाद भीतर गए। खबर की गई। पत्नी से कहा—'किसी को शर्बत, किसी को पानी ! यह क्या ?'

'केवल आपके लिए शर्बत था, और सबके लिए पानी।'

'क्यों ? यह भेद क्यों किया गया ?'

'क्या किया जाता ?'

'मैं ही सब-कुछ हूँ – ये लोग आपके कोई नहीं हैं ? मेरे सिपाही आपके कोई नहीं ?'

'आपके सब-कुछ होने से ही मेरे भी कुछ-न-कुछ हैं।'

पत्नी को उग्र होता हुआ देखकर मुसाहिबजू भी उत्तेजित हुए। बोले—'किसी दिन पानी न होगा, तो क्या पिलावेंगी आप ?'

'जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तो कुएँ नहीं सूखेंगे। मेरे पीछे जो-कुछ हो।'

मुसाहिबजू कुछ ठण्डे पड़े। नरम स्वर में बोले—क्या इतनी भी खाँड़ न थी कि थोड़ी-थोड़ी सब के बाँट में पड़ जाती ?'

चरखारी वाली की उग्रता में अन्तर नहीं आया। बोलीं – 'थोड़ी वस्तु को बढ़ा देने का रसायन मुझको नहीं मालूम है।'

मुसाहिबजू और नरम पड़े। बोले—'पहले तो कई बार मैंने इस रसायन के उदाहरण देखे हैं।'

'अब भी देखिएगा।'—ज़रा कम्पित स्वर में चरखारी वाली ने कहा।

गम्भीर होकर मुसाहिबजू ने पूछा—'क्या खाँड़ मेरे ही लोटे में थी या और भी किसी को दी गई?'

'केवल इतनी थी कि आपको दी जा सके।'—सरल उत्तर मिला।

मुसाहिबजू ने ज़रा कठोरता के साथ कहा—'यह बहुत बुरा हुआ। जो-कुछ हो, सब के लिए एक-सा होना चाहिए। मेरा जीवन मेरे सैनिकों से ही सार्थक है। मेरे लिए धिक्कार है, यदि मैं पेट भर खाऊँ और मेरे आदमी भूखे या अध पेटे रहें।'

'आज कदाचित् ऐसा ही होगा।'—चरखारी वाली ने भी निर्ममता के साथ उत्तर दिया।

'तब मैं भी आज भोजन नहीं करूँगा।' मुसाहिबजू ने कहा—'हम सब लोग भूखे ही रहेंगे।'

मीठे स्वर में चरखारी वाली ने जवाब दिया—'आज तो यह नौबत न आवेगी।'

मुसाहिबजू ढल गए। उन्होंने उत्सुकता के साथ पूछा—'भोजन की काफ़ी सामग्री है भण्डार में?'

चरखारी वाली ने हँसकर कहा—'आपको हमारे भीतर की बातों से क्या प्रयोजन है? आज आपकी सेवा में कितने सैनिक हैं?'

एक क्षण सोच कर मुसाहिबजू बोले—'ठीक-ठीक नहीं मालूम। अभी समाचार भेजता हूँ; परन्तु पूरन के लिए आज और आगे १०-१५ दिन तक विशेष भोजन का प्रबन्ध करना पड़ेगा। उसको बहुत चोट आई है।'

'मैंने सुन लिया है।' चरखारी वाली ने कहा—'उसने अपने निमक की बजाई है। उसकी सुश्रूषा बहुत अच्छी तरह होनी चाहिए।'

'अब की बार किसानों ने पूरा लगान नहीं दिया है, इसीलिए बीच-बीच में अटक पड़ जाती है। क्या करें, कहीं कोई युद्ध भी नहीं होता है, जिससे सिपाहियों का कुछ दिनों काम चले।' मुसाहिबजू कहते चले गये—'उनकी संख्या कम भी नहीं की जा सकती है। अँग्रेजों के साथ सन्धि हो जाने पर भी सिंधिया की ओर से खुटका बना रहता है। किसी दिन अंग्रेजों और मराठों को फिर छिड़ जावे, तो हमारे हथियारों की भी जङ्ग छूटे।'

चरखारी वाली इस प्रकार का मन्तव्य अनेक बार सुन चुकी थीं। बोलीं—'सैनिकों की संख्या कम न की जावे। आप बारह सौ योद्धाओं के नायक हैं। उनमें कमी होने से आपके प्राचीन गौरव को बट्टा लगने का डर है।'

मुसाहिबजू ने एक ओर देख कर कहा—'यदि उस समय पूरन ने अपने प्राणों की होड़ न लगाई होती, तो तेंदुआ तो मेरी छाती पर आ ही गया था।'

'आप क्या तबा लगाकर नहीं गए थे?'—चरखारी वाली ने दृष्टि गड़ा कर पूछा।

मुसाहिबजू ने उत्तर दिया—'शिकार में तवा लगा कर कोई नहीं जाता।'

'पूरन की मरहम-पट्टी का तो अच्छा प्रबन्ध हो गया है ?' उन्होंने दूसरा प्रश्न किया।

मुसाहिबजू ने उत्तर दिया—'वह तो हो गया है। अब उसके लिए विशेष भोजन का प्रबन्ध हो जाना चाहिए। कदाचित् उसको बिलकुल अच्छा होने में एक महीना लग जावे। तेंदुए के दाँत और नाखून में विष होता है।'

'जानती हूँ'—चरखारी वाली बोलीं—'नाहर की अपेक्षा बहुत कम भयानक होता है। उसके भोजन का उचित प्रबन्ध हो जावेगा।'

मुसाहिबजू वर्तमान समस्या को इस तरह सुलझी देखकर सन्तोष के साथ ड्योढ़ी में लौट आए। अपने साथियों से कह दिया कि बहुत शीघ्र रसोई तैयार हुई जाती है। खाँड़ वाली बात की कसक जी से निकल गई। 'नाहर की अपेक्षा बहुत कम भयानक होता है' जरूर जरा ज्यादा देर तक याद रहा।

अकेली रह जाने पर चरखारी वाली की आँख में छोटा-सा आँसू आ गया। उसको पोंछ डाला। सोचने लगीं, 'शिकार में तवा लगा कर नहीं जाते, तो युद्ध में क्यों जाते हैं ? आक्रमण और आत्म-रक्षा का तो अखण्ड सम्बन्ध है।' फिर भीतर जाकर एक सन्दूकची में से अपनी रत्न-जटित स्वर्ण-पहुंचियाँ निकालीं। मनमें कहा, 'बहुमूल्य हैं; इस समय धरोहर रखकर पाँच सौ रुपये

मँगा लेने से कुछ दिनों काम चल जावेगा। तब तक उगाही का रुपया आ जावेगा।' प्रधान रसोइन को बुला कर कहा—'कितने लोगों के लिए खाना बनेगा, इसका पता लगाओ।'

उसने उत्तर दिया—'पता लगा लिया है। बहुत हैं। भण्डारे में...।'

चरखारी वाली ने बात पूरी नहीं होने दी। कहा—'घबराओ मत, अन्नपूर्णा सहायता करेंगी। लल्ली लोधी को बुलवा लो।'

रसोइन प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगी। वह मुस्कराकर बोलीं—'ये पहुँचियाँ उसको देकर कुञ्जी के यहाँ भेज दो। पाँच सौ रुपये इसी समय ले आवे। रुपये आते ही तुरन्त भण्डार की कमी को पूरा करो और भोजन तैयार करो। मुसाहिबजू और उनके सैनिक थके-मांदे है। पूरन को हलुवा और खीर दो—आज सभी को हलुवा और खीर दो। भूलना मत। मैं पूरन को कुछ पारितोषिक भी दिया चाहती हूँ।'

'वह उसको पहले ही मिल गया है।' रसोइन ने कहा—'राजा ने अपने निज के पहनने का गुञ्ज पूरन को पहना दिया है।'

मुसाहिब-पत्नी बोलीं—'चलो, मेरा बोझ हल्का हुआ।' दूसरी ओर मुँह फेर कर उन्होंने एक हल्की-सी आह खींची। फिर उसी क्षण सम्मुख होकर रसोइन से कहा—'सेनापति के लिए उनके योद्धा ही सब कुछ होते हैं।'

'अब आप और कुछ पारितोषिक न दीजिएगा।' रसोइन ने सम्मति दी--'ज़रा-ज़रा सी बात पर पुरस्कार लुटाने से पाने वालों का स्वभाव बिगड़ जाता है।'

'मैं पुरस्कार के सिद्धान्त को जानती हूँ। तुम इन पहुँचियों को लल्ली द्वारा कुञ्जी के पास भेज दो। जल्दी जाओ।'

रसोइन पहुँची की जोड़ी लेकर चली गई। चरखारी वाली सोचने लगीं, 'अपने पहनने का गुञ्ज भी दे दिया! मैंने लक्ष नहीं कर पाया, नहीं तो पूछती। परन्तु पूछ कर क्या करती? रीता गला भला नहीं मालूम पड़ेगा। गुञ्ज का प्रबन्ध भी शीघ्र ही होना चाहिए। पर इस समय कुछ नहीं कर सकती हूँ। क्या करूँ, बड़ी विपद है! अब गांठ में और कोई ऐसे आभूषण भी नहीं हैं। घर जाऊँ; तब कुछ ठीक पड़े।'

— ५ —

कुञ्जी सेठ पड़ोस में ही रहता था। लल्ली पहले भी कई बार अटक-भीर के समय इसी तरह मुसाहिब-पत्नी के आभूषण कुञ्जी के यहाँ गिरवी रख चुका था। गिरवी रखने के बाद फिर आभूषण कभी नहीं छुड़ाये जा सके। ब्याज इतना बढ़ा कि कुछ भी न दिया जा सका। मुसाहिबजू को भी मालूम था। वे आशा करते थे कि किसी अदृष्ट अचानक साधन द्वारा कभी इतना धन हाथ आ जायगा कि सब आभूषण, कदाचित् एक ही दिन में, छुड़ा लिए जायेंगे, अथवा किसी दिन किसी अदृष्ट आकस्मिक घटना द्वारा कम न किए जाने योग्य व्यय बिलकुल कम हो जायेंगे और जागीर की आय से ही सारा ऋण चुका दिया जायगा। इसीलिए वे ब्याज देने की चिन्ता में अपने को बहुत कम खपाते थे। और जब तक पत्नी के आभूषण ठेल दिए चले जाते थे, तब तक त्रास को मन में बसाने की आवश्यकता ही क्या पड़ सकती थी ?

लल्ली कुञ्जी के घर गया। उस समय कुञ्जी घर पर नहीं था। उसकी लड़की थी। सुभद्रा नाम था। युवावस्था-प्राप्त विवाहित स्त्री थी। पतिगृह में सुख न मिलने के कारण प्रायः बाप के पास रहती थी। ४-६ महीने में विवश होकर जब उसको पति के घर जाना पड़ता था, तब दो चार दिन रह कर फिर मायके चली आती थी। घर में बाप के सिवा और कोई न था। वह पति के यहाँ से कुछ महीने हुए लौट कर आई थी।

कुञ्जी को घर में न देख कर लल्ली ने पूछा—'कक्का कहां गये हैं ? तुम कब आईं ?'

'कहीं बाहर गए हैं। आते ही होंगे।'—सुभद्रा ने अपने काले बालों को जरा-सा ढाँकते हुए कहा; परन्तु अन्तिम प्रश्न का उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

लल्ली दरवाजे के पास बैठ गया। एक ओर देखते हुए बोला—'बहुत दुबली हो गई हो।'

'जी अच्छा नहीं रहा।'

'कोई दवा खाई ?'

'मैं दवा नहीं खाती।'

'कक्का से कहूँगा कि तुम्हारी अच्छी तरह चिकित्सा करा दें।'

'भगवान् मेरी सुनलें, तो पूरी चिकित्सा हो जावे'—सुभद्रा मुस्कराई। उसकी मुस्कराहट में मादकता थी।

लल्ली ने जोश के साथ कहा—'ऐसा मत कहो। सुनने में बुरा मालूम होता है।'

सुभद्रा घर के एक भीतरी कोठे में चली गई। लल्ली रह-रह कर उसी ओर देखने लगा। कभी-कभी सड़क की ओर भी देख लेता। थोड़ी देर के बाद सुभद्रा भीतर से ही बोली—'शायद कक्का को आने में विलम्ब हो जाय।'

लल्ली ने कहा—'तुम तो कहती थीं कि वह आते ही होंगे।'

'कहीं कोई काम लग गया, तो अटक भी तो सकते हैं।'—सुभद्रा भीतर से ही बोली।

'मैं तब तक नहीं टलने का, जब तक कक्का नहीं आते।' लल्ली ने निश्चय प्रकट किया—'मुझको बड़ा आवश्यक काम है।'

सुभद्रा कोठरी से बाहर नहीं आई। वहीं से बातचीत करती रही—'क्या काम है ?'

'इतनी दूर से चिल्लाकर नहीं बतलाया जा सकता।'

'दूर क्या है ?'

'तुम।'

सुभद्रा ने इस पर कुछ नहीं कहा। लल्ली भी चुप बैठा रहा। जिस कोठरी में सुभद्रा चली गई थी, वहाँ से कभी उसकी चूड़ियां और कभी पैजनों की आवाज़ आने लगी। लल्ली कभी सड़क पर से आने-जाने वालों को देखता और कभी उस आवाज़ को सुनता। इस तरह कुछ समय हो गया।

जमुहाई लेकर लल्ली ने पूछा—'सुभद्रा क्या सो गईं ? इसीलिए तो जी अच्छा नहीं रहता।'

कोठरी में से सुभद्रा की हँसी का स्वर सुनाई पड़ा। उत्तर दिया—'तुम जाग रहे हो, मैं सो रही हूँ।'

लल्ली—'ऐसा कब तक होता रहेगा ?'

सुभद्रा—'जब तक जीवन है।'

लल्ली—'जीवन का कौन ठिकाना है ?'

सुभद्रा—'हमारा भी तो कोई ठिकाना नहीं।'

लल्ली—'अन्धे कोठे में से ऐसी बात मत कहो।'

सुभद्रा—'तुम्हारे पास तो उजेला है।'

लल्ली 'अकेले तो अँधेरा-उजेला दोनों बराबर हैं।'

सुभद्रा—'दुकेले से उजेला भी अँधेरा हो जायगा।'

लल्ली—'और अँधेरा उजेला !'

सुभद्रा—'आज तो बड़ी अड़ पकड़ रहे हो।'

लल्ली - 'अपने मन से पूछो। जब से आईं, दिखलाई तक नहीं दीं।'

सुभद्रा—'मन ही तो बतला रहा है। किसी मतलब से आए होंगे।'

लल्ली—'मतलब न होता, तो मुसाहिबजू के यहां ही न चिलम-तम्बाकू चलती।'

सुभद्रा—'तम्बाकू-चिलम दे जाऊँ ?'

लल्ली—'किसी बहाने सही, अन्धी कोठरी तो छोड़ो।'

सुभद्रा मुस्कराती हुई बाहर आई। चिलम-तम्बाकू दी और एक ओर बैठ गई। तम्बाकू भर कर लल्ली चिलम पीने लगा।

सुभद्रा निकटवर्ती ग्राम बड़ौनी में ब्याही थी। लल्ली ने धुआं खींचते-खींचते पूछा—'बड़ौनी क्या जल्दी जाना होगा ?'

लल्ली सुभद्रा का पुराना परिचित था और दिल्लगी करना तथा चिढ़ाना अपने अधिकार के भीतर की बात समझता था। सुभद्रा उस पुराने परिचय के व्यवधानों में अपेक्षा और उपेक्षा दोनों अवगत करने लगी थी। बोली—'जल्दी जाऊँ या देर से, तुमको क्या पड़ी है ?'

लल्ली ने उत्तर दिया -'पड़ी है, तभी तो पूछा।'

सुभद्रा—'फिर इतने दिनों बाद आकर क्यों पूछा ?'

लल्ली—'हमने तो हाल ही में सुना था।'

सुभद्रा—'झूठे हो !'

लल्ली—'सच्ची बात है, सुभद्रा ! सिपाही हैं। इधर-उधर के काम लगे रहते हैं। फुरसत ही नहीं मिलती।'

सुभद्रा—'रोज तो तुमको यहाँ से निकलते देखती हूं।'

लल्ली सड़क की ओर देखने लगा। बोला—'वे दिन कैसे मीठे थे, सुभद्रा ! कभी नहीं भूल सकता हूं।'

सुभद्रा चिढ़कर बोली—'न कोई दिन मीठे होते हैं और न खट्टे। अपने मन की दशा पर निर्भर है।'

लल्ली ने मधुरता के साथ प्रश्न किया—'तुम्हारा मन कैसा है, सुभद्रा ?'

सुभद्रा ने मुँह फेरकर उत्तर दिया—'जैसा तुम्हारा नहीं है।'

लल्ली ने उत्तेजित होकर कहा—'कभी परीक्षा कर लेना। या तो मुसाहिबजू के लिए गर्दन दे सकता हूँ या तुम्हारे लिए।'

सुभद्रा बोली—'देखूँगी।'

इतने में सामने से सुभद्रा का पिता कुब्जी आता दिखाई पड़ा। सुभद्रा ने भौंहें चढ़ा कर कहा—'तुम्हारे लिए यह बड़ी ने से बैठे हैं।'

लल्ली बोला—'एक चिलम तम्बाकू भी पी चुका हूं।'

कुब्जी ने पौर में जूते उतारते हुए आदर पूर्वक पूछा—'माते को छालिया नहीं खिलाई ?'

सुभद्रा ने उत्तर दिया—'तम्बाकू के सामने छालिया को कौन लेने लगा ?'

कुञ्जी को असन्तोष नहीं हुआ। वृद्ध कुञ्जी की सुभद्रा वय-प्राप्त लड़की थी। लल्ली प्रसिद्ध मुसाहिबजू का पदगौरवान्वित सैनिक था और मुसाहिबजू के गहने गिरवी रखने के लिये बहुधा यहीं आया करता था। यद्यपि लल्ली और सुभद्रा के वास्तविक सम्बन्ध की बात उसको मालूम न थी, तथापि वह उनके प्रासंगिक सम्पर्क में कोई असुविधाजनक सन्देह अनुभव नहीं करता था। उसका काफ़ी लेन-देन था; परन्तु वह उसकी सीमा को सदा संकुचित प्रकट किया करता था और अपना रहन-सहन इतना सादा, यहाँ तक कि टुच्चा, प्रदर्शित करता था, जिसमें उस समय के झंझट और अशान्ति में कोई उसकी असाधारण लोगों में गिनती न कर सके।

कुञ्जी ने एक चिलम और तैयार की। लल्ली को देकर शिष्टता के साथ आने का कारण पूछा। लल्ली ने चरखारी वाली सरकार की सोने की जड़ाऊ पहुँचियाँ सामने रखकर कहा—'पाँच सौ रुपये इसी समय चाहिये।'

ललचाई हुई आँखों को एक ओर नियन्त्रित करके कुञ्जी बोला-'माते, हम तो मुसाहिबजू की चाकरी के लिए सदा हाज़िर हैं; परन्तु आप ही सोचो, कितना पिछला हिसाब पड़ा हुआ है और इसी समय इतने रुपये तो शायद ही घर में निकलें।'

लल्ली ने सुभद्रा का लिहाज़ करते हुए कहा—'रुपये के, आपके यहाँ, भगवान् ने भण्डार भर रखे हैं। रह गया हिसाब, सो

जितना रुपया मुसाहिबजू के यहाँ गया है, सब सोने के जेवर पर गया है। उठाने आवेंगे, तो आपका ब्याज और असल देंगे, नहीं तो सोना तो आपके हाथ में है ही। कहो सुभद्रा, मैंने ग़लत तो नहीं कहा ?'

सुभद्रा ने साधकर उत्तर दिया—'न मुझको गहने से प्रयोजन है और न रुपये से। मुझको तो चैन से रोटी खाने को मिल जाती है, और मुझको करना ही क्या है।'

कुञ्जी बोला—'माते, जो-कुछ मेरे पास चार पैसे की गृहस्थी है, इसी लड़की के लिए है। बड़ौनी में एक ब्याह है, इसलिए एकाध बार और भेजूँगा, फिर तो जो कुछ रूखी-सूखी यहाँ मिले, यहीं रहेगी। मेरे अब हाथ-पैर नहीं चलते। यह होशियार है। थोड़ी-सी पूंजी का जो मेरा लेन-देन है, चला लेगी।'

लल्ली ने कहा—'सुभद्रा, जाओ तो पाँच सौ रुपये निकाल लाओ। मुझको शीघ्र ही मुसाहिबजू के यहाँ हाज़िरी देनी है। लो सेठ, तुम सोना और इसके जवाहिर परख लो।'

'क्या परखना है।'—कहते हुए कुञ्जी ने बारीकी के साथ पहुंचियों को परखा। बाप का संकेत पाकर सुभद्रा रुपया लेने भीतर चली गई।

कुञ्जी बोला—'आपने कहा, सो बिलकुल ठीक है; परन्तु गहने पर गहना रखते जाने से रुपये का तो आना ही रुक जाता है। जब तक हिसाब न हो जाय या यह हुकुम न हो जाय कि गहना असल और ब्याज में डुबो दिया, तब तक बेच नहीं सकता और बिना बेचे रुपया हाथ आ नहीं सकता। आप ही बतलाओ,

क्या करूँ ? छोटा-सा लेन-देन है। थोड़े रुपये कभी कभी आ जाते हैं। अब ये इकट्ठे पांच सौ रुपये चले बुरा न माना जाय। यदि कोई बड़ी रक़म माँगने वाला सोना लेकर आ जाय, तो नाहीं करनी पड़ेगी; क्योंकि देना फैलाने के लिए लेना गिनती में पहले है।'

लल्ली उपयुक्त व्याख्या के चिन्तन में चिलम पीता रहा; परन्तु बोला कुछ नहीं। सुभद्रा पाँच सौ रुपये लेकर आ गई। लल्ली के सामने रख दिए। लल्ली ने गिन कर बाँध लिए। कुञ्जी पहुंचियों को सावधानी के साथ रखने के लिए भीतर चला गया। सुभद्रा उसके पीछे-पीछे जाने को हुई।

लल्ली हँसकर बोला—'आगे कभी रुपये की ज़रूरत पड़ी, तो सेठ से न माँगकर तुमसे लूँगा।'

सुभद्रा ने मुस्कराकर कहा—'मेरे पास क्या रखा है ? गहना क्या, मोती-जवाहर भी लाओगे, तो मुझसे कुछ न पाओगे।'

लल्ली धीरे से बोला—'कुछ तो पाऊँगा।'

कोठरी में प्रविष्ट पिता की ओर देखते हुए सुभद्रा ने कहा—'मेरे पास थोड़े-से ये चाँदी के ज़ेवर हैं और एकाध हल्का सा सोने का है। पैसा-कौड़ी गाँठ में एक नहीं। मैं क्या लेन-देन करूँगी ?'

लल्ली बहुत धीरे से कहता हुआ चला गया—'बतलाऊँगा, तुम्हारे पास क्या है'।

— ६ —

मराठी सेनाएं अंग्रेज़ों की सेनाओं से हार चुकी थीं, अर्थात् मराठे राजाओं द्वारा परिचालित राजनीति में विभक्त—यद्यपि फ्रान्सीसी, जर्मन इत्यादि यूरोपियन सेनानायकों द्वारा शिक्षित-भारतीय सेनाएँ अँगरेज़-राजनीति से परिचालित अँगरेज़ों द्वारा शिक्षित भारतीय सेनाओं से हार गई थीं। ग्वालियर, इन्दौर इत्यादि प्रबल मराठे नरेश अँगरेज़ों की सन्धियों को क़बूल कर चुके थे; परन्तु उनके हृदयों ने अँगरेज़ों के लोहे को मान लिया हो, सो नहीं हुआ था। सामाजिक अशान्ति के बाहरी चिन्ह कम हुए दिखलाई पड़ते थे; परन्तु लोगों के मन में विश्वास नहीं बैठा था कि जो कुछ परसों तक होता रहा था, वह कल फिर से न हो उठेगा। खारखाए किसी ऊबट घड़ी की बाट जोह रहे थे। व्यापारीवर्ग कुछ साँस लेने लगा था; परन्तु दम कब उखड़ बैठे, इसकी धुक-धुक लगी हुई थी। चाहे जिस तरह की शङ्काकुल कहानी को कोई भी भयभीत व्यक्ति विश्वास किए जाने की आशा पर उत्पन्न, विकसित और विस्तृत कर सकता था।

राजा विजयबहादुर सिंह को उनके विश्वस्त हरकारों ने समाचार दिया कि ग्वालियर-राज्य दतिया पर आक्रमण करने की गुप्त योजना कर रहा है और शायद बड़ौनी के जागीरदार ग्वालियर का साथ दें! ग्वालियर से दतिया की कई बार खटकी थी, जिसमें किसी प्रकार दतिया-राज्य ग्वालियर में सम्मिलित होने से बाल-बाल बचता गया था। बड़ौनी के जागीरदारों से

दतिया का मनमुटाव औरङ्गजेब के देहान्त के बाद से ही चला आया था; परन्तु कोई ऐसी घटना नहीं हुई थी, जिससे इस मनमुटाव को तोप-तलवार का रूप मिल पाया हो। फिर भी वातावरण में शङ्का की प्रधानता थी। अङ्गरेज़ों के साथ सन्धि हाल ही में हुई थी। उनकी सहायता अपने हितों की रक्षा के निमित्त जैसे और रईस लेते थे, वैसे ही दतिया-राज्य भी ले सकता था; परन्तु अपने को सबल बना लेने पर बाहर के मित्र भी प्रबल सहायता दे सकते हैं, यह सोच कर राजा विजयबहादुर सिंह ने और उनके सम्मतिदाताओं ने पहले अपनी सेना को बली बनाने और फिर अङ्गरेज़ों को सहायता के लिये न्योतने का निश्चय किया।

राजा ने मुसाहिब दलीपसिंह को बुलाया। बुलाने के पहले ही मुसाहिब को बुलावे का उद्देश्य विदित हो गया था। उन्होंने अपने खास आदमी जागीर के और आस-पास के गाँवों में तुरन्त सैन्य संग्रह के लिए भेज दिए।

दरबार में राजा मसनद पर थे। तकिया से टिके हुक्का पी रहे थे। दीवान और थोड़े से अन्य विशिष्ट दरबारी अदब के साथ नीचे बैठे थे। मुसाहिब भी मुजरा करके यथास्थान बैठ गए। राजा ने आदर के साथ दलीपसिंह से कहा—'मुसाहिबजू, कुछ खटका सुनने में आया है। आशा है कि सङ्कट भगवान् की दया से आयगा नहीं; परन्तु ज़माना अच्छा नहीं है, इसलिए अपनी सेना को चाक चौबन्द रखना चाहिए।'

दीवान बोला—'महाराज की मर्ज़ी ठीक हुई है। मुसाहिबजू की सेना तो तैयार ही रहती है। यदि कोई कसर हो भी—मेरी समझ में कसर बिलकुल नहीं है—तो शीघ्र पूरी हो जायगी।' दीवान जानता था कि मुसाहिब दलीपसिंह राजा के प्रियपात्र हैं; परन्तु वह राजा की चिन्ता से भी परिचित था।

मुसाहिब ने नम्रता और दृढ़ता के साथ कहा—'दीनबन्धु की जो आज्ञा हुई है, उसका पालन तुरन्त होगा।'

राजा—'आपके पास १२०० सिपाही हैं?'

मुसाहिब—'हाँ महाराज, और भी बढ़ाए जा सकते हैं।'

राजा ने मन में खज़ाने की ओर आँख फेर कर कहा—'नहीं इतने ही चौकस रक्खो। बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है। बात सधते-सधते अङ्गरेज़ों की भी सहायता आ पहुंचेगी। सन्धिपत्र में शर्त है।'

कहा किसी ने नहीं; परन्तु सोचा सभी ने कि जैसे अनेक पूर्व सत्ताधारियों ने सन्धि-पत्रों की अवहेलना की, उसी प्रकार अङ्गरेज़ भी कर सकते हैं। इसलिए यही निश्चय स्थिर किया गया कि सेना इकट्ठी करके तैयार हालत में रखली जाय।

इसके उपरान्त शिकार और अमोद-प्रमोद के प्रसङ्ग में दरबार का वार्तालाप सरक गया।

राजा—'उस तेंदुए की छाल बनवाली? सुना है, बड़ा था।'

मुसाहिब—'हाँ दीनबन्धु, बड़ा था। परन्तु गले की खाल कट जाने के कारण मेरे पसन्द नहीं आई। एक साधू ने भजन के लिए माँग ली, सो मैंने दे दी।'

दीवान—'वही साधू होंगे, जो आदेके बाग़ म ठहरे थे ?'

मुसाहिब—'जी हाँ, कुछ दिनों ठहरे थे –'

राजा—'रामसागर पर एक साधू ठहरे हैं। उन्होंने ख़बर दी है कि पास ही डांग में नाहर की जोड़ी ठहरी हुई है।'

मुसाहिब—'महाराज, सेंहुड़े के पास से भी नाहरों का समाचार आया है।'

राजा—'पिछली बार सेहुड़े जाते हुए इन्द्रगढ़ में जलसे के लिए रुक गए थे और फिर दतिया लौट आना पड़ा था। वहां तक पहुंच ही नहीं पाए।'

दीवान—'दिल्ली से एक बीनकार आए हैं। गोसाईं हैं। बड़ी तारीफ़ सुनी है।'

राजा—'बिब्बो भी तो इन्द्रगढ़ से यहीं आगई है। गोसाईं जी उसके साथ बीन बजा सकेंगे ?'

दीवान—'महाराज, हाथ तो उनका बहुत तैयार है।'

राजा—'तुमने सुना है ?'

दीवान—'महाराज !'

राजा 'तो अलग से भी सुनेंगे और बिब्बो के गले के साथ भी।' इस प्रकार शिकार से शुरू होकर दरबार का वार्तालाप गायिका के गले में समा गया।

— ७ —

३-४ दिन के भीतर ही मुसाहिबजू की गढ़ी के आस-पास सैनिकों के झुण्ड के झुण्ड एकत्र होने लगे। सब के पास बन्दूक़ और ढाल-तलवार। मूँगिए कपड़े पहिने और बुन्देलखण्डी झब्बू जूते। न कोई नियम, न कोई संयम। क़वायद-परेड बहुत थोड़े सिपाहियों को सिखाई गई थी; पर इनकी नक़ल अन्य सिपाही उत्साह और ध्यान के साथ कर रहे थे, जो हवालदार के परिश्रम की कमी की पूर्ति कर रही थी। एक बड़ा झुण्ड भरतगढ़ के आस पास ठहर गया, बाक़ी कोई कहीं, कोई कहीं। पर सबके भोजन के लिए अटाला भरतगढ़ में ही था। ब्राह्मण रसोइयों के रसोड़ों में दाल-रोटी और घी का प्रबन्ध था। यद्यपि सिपाहियों में कतार और घड़ी की सुई की तरह की पाबन्दी न थी, तो भी उनके दल और दस्ते बँटे हुए थे। इन दलों और दस्तों के अलग-अलग अफ़सर और कर्मचारी थे। बहियों में नाम, पता-ठिकाना, वेतन, हथियार इत्यादि दर्ज था, जो बख़्शी नाम के उच्च पदाधिकारी के हाथ में रहती थीं। सेना में मिस्री थे, कमठाना था। सिपाहियों में अपने सेनापति और सरदार की आन को पकड़ने और उसके लिए अपने प्राण आहुत कर देने की बान थी। इन्हीं सिपाहियों की सहायता से दक्षिण में बीजापुर और गोलकुंडा तथा उत्तर-पश्चिम में काबुल और कन्दहार को औरङ्गज़ेब ने विनय सिखलाई थी।

श्रीवास्तव की ढाली हुई तोपों ने उत्तर में सिन्ध-सतलज और दक्षिण में कृष्णा-कावेरी की मुहिमों और मोर्चों को मरोड़ा था।

पड़ोसी सिन्धिया के डीबोयें, पैरों और फ़ीलोज़ सेनापति बुन्देलखण्डी कड़ावीन और तलवार को पहिचानते थे; परन्तु बुन्देलखण्डी सेना के पास नहीं थी तो समझी-सुलझी हुई राजनीति, और अपने को सुधारने-सम्भालने की प्रवृत्ति। उनके नायक और सञ्चालक अदूरदर्शी, आलसी और निकम्मे हो गए थे। तब सिपाही पुराने हथियारों के भरोसे नई हेकड़ी के साथ पुरानी डींगों को मारने के सिवाय और करते ही क्या? और टोली बाँध-बाँध कर शराब, शिकार, गाँजा-भाँग और कम से कम तम्बाकू के दौरों की ओर क्यों न दौड़ते? इनका नायकत्व सड़ गया था और परम्परा गल गई थी। ये लोग लोहे के बेकार लाढ़ों की तरह बिखरे से पड़े थे।

छावनीबन्द सिपाही थोड़े ही रह गए थे, बाक़ी भुमियाँ थे और केवल भुमियाँ रह गए। बहुत शीघ्र बड़ा परिवर्तन हो गया। थोड़े से ही वर्ष पहले इसी प्रकार की बुन्देलखण्डी सेना ने अङ्गरेज़ी सेना को विन्ध्याचल की घाटियों और बेतवा-धसान के भरकों में विध्वंस कर दिया था। अङ्गरेज़ी सेना ने उस पराजय से सबक़ सीखा और कुछ ही महीनों पीछे विजेताओं को परास्त करके सन्धि की शर्तों में बाँध लिया—यद्यपि जिन शर्तों से बाँधा था, वे ज़रतारी रेशम से बनी हुई थीं। परन्तु अङ्गरेज़ी सैन्य के बुन्देलखण्डी विजेताओं ने कुछ नहीं सीखा। सीखा यदि-तो केवल बख़्शीजी के बही-खातों में सिपाहियों का वेतन बक़ाया में डालना!

मुसाहिब दलीपसिंह के अधिकांश सिपाहियों का वेतन भी महीनों की बक़ाया में पड़ा था। सेंहुड़े के आस-पास से सिपाही

लड़ने की उमङ्ग और बक़ाया वेतन की वसूली की आशा में—दनिया में, शीघ्र जमा हो गए थे। मुसाहिब को बख़शी ने सम्पूर्ण स्थिति, करारी आर्थिक स्थिति समझा दी। मुसाहिब बहुत चिन्तित हुए।

जागीर के गाँवों से लगान वसूल हो नहीं सकता था। सिपाहियों की संख्या कम नहीं की जा सकती थी। बख़शी के बही-खातों को छेंका या मिटाया नहीं जा सकता था। सेना के संग्रह और तैयारी का वचन छाती ठोंक कर दरबार में राजा को दे आए थे। जमा होते चले जाने वाले सिपाहियों की चहल-पहल बढ़ती चली जा रही थी। उनके हो-हल्ले, हास्य-परिहास और गपशप की तह में तनख़ाहों का बक़ाया दृढ़ता के साथ झाँक रहा था। मुसाहिब चिन्तित थे, परन्तु घबराहट उनकी प्रकृति में न थी। चरखारी वाली सरकार का, अन्तमें चरखारी राज्य का सहारा और अपना उदार मन घबराहट को रोकने में सहायक बन रहा था। परन्तु कहने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी; बिना कहे काम बन भी नहीं सकता था। एक-एक क्षण दुस्सह होता चला जा रहा था। अन्त में रावर (अन्तःपुर) में दूती की मारफ़त अपने आने की ख़बर भेजी। बुलावा आगया। बरबस मुस्कराते हुए सामने पहुंचे। नौकरानी पान बनाकर लाई और देकर चली गई। पर मुसाहिब बात न कर सके।

चरखारी वाली सरकार ने अपनी कल्पना से सब समझ लिया, तो भी हँसकर पूछने लगीं—'सब सिपाहियों के लिए डेरे का प्रबन्ध हो गया ?'

'हो गया है।'-मुसाहिब ने शीघ्र उत्तर दिया—'कहीं लड़ाई लग जाय, तो मन भी खूब बहले और सिपाहियों के हथियारों का मोर्चा छूट जाय।'

'कितने आदमी इकट्ठे हो गए हैं?'

'लगभग १२०० होंगे।'

'बख़्शी जी ने हाज़िरी तो ली होगी?'

'ली तो है, ठीक-ठीक संख्या उनके पास है।'

'रसोइए, रसोई तो ठीक समय पर बनाते, देते चले जा रहे हैं?'

'वह सब प्रबन्ध हो गया है। सिपाही उमङ्गों में हैं और किसी भी सेना से टक्कर ले सकते हैं।'

'अङ्गरेज़ों से तो नहीं डरते?'

'डरते तो यमराज से भी नहीं है; परन्तु हथियार अङ्गरेज़ों के पास अच्छे हैं।'

'आप भी अपनी सेना को अच्छे हथियार दीजिए।'

'सो तो बहुत आवश्यक है ही; परन्तु इसका प्रबन्ध राजा को करना चाहिए।'

'सिपाहियों के वेतन का?'

'यह जिम्मा हमारा है। परन्तु·····परन्तु अभी रुपया तो हैं ही नहीं और उनके कई महीने बाक़ी में पड़े हैं।' मुसाहिब ने सिर ज़रा नीचा करके कहा—'यही तो चिन्ता का कारण हो जाता है।'

चरखारी वाली ने उत्तर दिया—'आप चिन्ता कभी मत किया कीजिए। इन सबकी बाक़ी आज ही चुका दीजिए।'

मुसाहिब—'कैसे ?'

चरखारी वाली—'जैसे मैं कहूँ।' मुसाहिब अपनी पत्नी का मुँह ताकने लगे। उन्होंने हँसते हुए कहा—'लल्ली माते की मारफ़त किसी बड़े साहूकार के यहाँ से रुपया मँगवा लीजिए। मेरे पास एक नथ कम से कम तीन हज़ार रुपए का है।'

मुसाहिब की आँख में आँसू आ गया। उसको चटपट पोंछ कर अत्यन्त कृतज्ञ दृष्टि से मुसाहिब ने पत्नी के प्रस्ताव को स्वीकृत किया। बोले—'मैं चाहता हूँ कि चाहे ग्वालियर हो चाहे अङ्गरेज, लड़ाई हो पड़े, तो वैरियों के छक्के छुटा दूँ और आपको मुँह दिखलाने लायक़ बनूँ।'

चरखारी वाली ने कन्धे पर हाथ रख कर मुस्कराते हुए कहा—'ऐसी बात मत कहिए। आपका बड़ा नाम है। काम भी बड़े करिए; परन्तु बख़्शी जी के बही-खातों पर ध्यान रखिए, १२०० आदमियों को वेतन तो अवश्य दीजिए; किन्तु उनको सुसज्जित बनाए रखिए, उनको यदि ढील मिली तो, गाढ़े समय पर काम न दे सकेंगे और आपके नाम को बट्टा लगा देंगे।'

'ऐसा ही करूँगा।'—मुसाहिब ने अपनी पत्नी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा।

थोड़ी देर बाद वह अपनी ड्योढ़ी में चले आए। चरखारी वाली की मुस्कराहट ने बिदा ले ली। सन्दूक खोलकर उन्होंने

अपना नथ निकाला। अब उस सन्दूक में थोड़ी-सी अँगूठियों और कुछ साधारण सोने के आभूषणों को छोड़ कर और कुछ न था। आकृति दृढ़ करके उन्होंने अपनी एक परिचारिका के हाथ नथ लल्ली के पास भिजवाया। लल्ली नथ को एक बड़े साहूकार के यहाँ २५००) रुपए में गिरवी रख कर रुपया ले आया। बख़्शी ने परिश्रम के साथ हिसाब करके बाक़ी चुकाई। कुछ बक़ाया अनुमान-भूत थी, उसको काट-कूट कर खाता ड्योढ़ा किया। रात के दस बजते-बजते सब हिसाब साफ़ हो गया और मुसाहिब को समाचार दे दिया गया। २००) बच गए वह मुसाहिब के हाथ में दे दिए गए। मुसाहिब ने प्रसन्नता पूर्वक इन रुपयों को भीतर पहुंचा दिया; परन्तु उनके विचार में यह नहीं आया कि बख़्शी के बही-खातों पर ध्यान कैसे रक्खा जाता है।

— ८ —

दतिया की तैयारी का समाचार विविध और विस्तृत रूप धारण करके ग्वालियर पहुंच गया। सिन्धिया सरकार अङ्गरेज़ों की उसी सन्धि से बँधी हुई थी, जिसमें दतिया, और सिन्धिया सरकार को ज्ञात था कि दतिया के साथ अङ्गरेज़ों की मैत्री तथा बराबरी की सन्धि है, शक्ति भले ही दतिया की उसके अनुपात में न होने के समान ही हो। इसलिए ग्वालियर से अधिकार-मूलक समाचार उसी सप्ताह दतिया में आ गया कि राजा किसी प्रकार की द्विविधा में न पड़ें और ग्वालियर की ओर से निशङ्क रहें।

राजा और उनका दरबार ग्वालियर की ओर से यथा-सम्भव बेखटके हो गया, और राज्य का जीवन पुराने ढर्रे पर फिर चलने लगा। मुसाहिब की सेना तितर-बितर होकर अपने घरों को चली गई। दतिया में उतने ही सैनिक और शिकारी रह गए, जितने साधारण समय में रहा करते थे। मुसाहिब और उनके बख़्शी ने ज़रा चैन की साँस ली।

उन्हीं दिनों रनवास में एक उत्सव हुआ। महारानी की परिचारिकाएँ चरखारी वाली सरकार को निमन्त्रित करने के लिए आईं। वह भोजन करने के उपरान्त शयन कर रही थीं। परिचारिकाओं का पान-सुपारी से सत्कार करवाया; परन्तु वह अपने स्वभाव के विरुद्ध पलङ्ग पर ही लेटी रहीं। बोलीं—'मैं अस्वस्थ हूँ। जी अच्छा रहा तो पीनस भिजवाने के लिये कहला भेजूँगी, अन्यथा माफ़ी के लिए बिनती कर देना।'

परिचारिकाएँ शिष्टाचार के बाद चली गईं। उनके जाने के पश्चात् चरखारी वाली सरकार चादर से मुँह ढँक कर सिसक-सिसक कर रोईं। रसोइनों को मालूम हो गया। अन्य परिचारिकाओं से भी छिपा न रहा। अन्त में ड्योढ़ी पर मुसाहिब के कुछ सैनिकों के भी कान में बात पहुँच गई; परन्तु मुसाहिब से किसी ने नहीं कहा। सैनिक-खास कर मुसाहिब का शिकारी वर्ग-विशेष चिन्तित हुआ। कारण जानने की उत्सुकता बढ़ी। कुतूहल ने शीघ्र व्यथा का रूप पकड़ा।

लल्ली को अकेले में ले जाकर रमू मिहतर ने कहा—'माते, ऐसा कभी नहीं हुआ। क्या क़िले से आई हुईं परिचारिकाएँ कोई अपमान कर गईं हैं?'

लल्ली ने उत्तर दिया—'मैं स्वयं हैरान हूँ। अपमान करने का साहस क़िले के बाहर-भीतर किसी में नहीं है।'

'फिर क्या बात हो सकती है?'

'मेरी भी समझ में नहीं आ रहा है।'

'पता लगाओ।'

'बड़ा कठिन और नाज़ुक काम है।'

'पर हमारा धर्म है कि मालिक की सब प्रकार से सेवा करें।'

'मुसाहिबजू से कहें? वह भीतर जाकर समझा-बुझा लेवें।'

'कदापि नहीं, उनके बिरते के भीतर की बात होती, तो जवाबवाली स्वयं आकर उनको बुला लेजाती। तुम किसी जवाबवाली से पूछो या पुछवाओ और यह कहलाओ कि सारी सेना कदमों में सिर काट कर चढ़ा देगी, मर्ज़ी भर हो जाय।'

'हाँ, ठीक मालूम होता है, रमू कक्का ! इसमें किसी को कुछ बुरा नहीं लगेगा।'

लल्ली ने जवाबवाली को बुलाया। उससे अकेले में गहना गिरवी और रुपए-पैसे की बात-चीत हुआ करती थी, इसलिए रमू के सुझाव के आधार पर इस विषय की चर्चा एकान्त में करने में कोई हिचक नहीं हुई। जवाववाली को खुद कुछ मालूम न था; परन्तु ढूँढ़-खोज के बाद कारण बतला जाने का आश्वासन देकर वह चली गई।

वह परिचारिका चरखारी वाली सरकार के पलङ्ग के निकट चुपचाप पहुंची। वह रोने के उपरान्त सो गई थीं। उत्सुकता से विवश होकर परिचारिका उनको जगा लेने को भी तैयार थी; किसी तरह धैर्य धर कर वह भूमि पर एक पीढ़ा बिछाकर बैठ गई और चरखारी वाली के जागने की प्रतीक्षा करने लगी। उसने एक घण्टा दर्जनों जमुहाइयाँ लेकर काट पाया। जागकर चरखारी वाली बिस्तर पर बैठ गईं। परिचारिका से आश्चर्य के साथ पूछा—'कितनी देर से बैठी हो ?'

'अभी थोड़ी देर हुई, जब यहाँ आई।' उसने उत्तर दिया, फिर सावधानी के साथ प्रश्न किया,—'उत्तर लेने के लिए महलों से कोई न कोई फिर आता ही होगा।'

चरखारी वाली ज़रा चकित होकर बोलीं—'क्या मैं बड़ी देर से सो रही हूँ ?' उनके कण्ठ में किसी गत दुःख की दारुणता का अवशेष अब भी था।

चतुर परिचारिका ने उत्तर दिया—'आप खूब सोई हैं, यह आपके स्वर से ही विदित हो रहा है।'

कण्ठ-स्वर के स्मारक ने स्मृतियों को फिर जगा दिया। चरखारी वाली की आँखें छलछला आईं। परिचारिका ने तुरन्त खड़े होकर कहा—'जल ले आऊँ?'

चरखारी वाली बोलीं—'नहीं, बैठ जाओ। प्यास नहीं है।'

'हुकुम होवे।' परिचारिका ने प्रस्ताव किया।

चरखारी वाली ने दृढ़ता के साथ कण्ठ का संयम करके कहा—'मैं क़िले नहीं जाऊँगी।'

'महाराज',—परिचारिका हाथ जोड़ कर उत्साह के साथ बोली—'चरखारी और दतिया एक कोटि के राज्य हैं। आप चरखारी की बेटी हैं और वह दतिया की रानी हैं। कोई अन्तर नहीं है। आप न जायँ, तो कोई कुछ नहीं कह सकता है। केवल यह भय लगता है कि महारानी साहब स्वयं यहाँ न आजावें। इस लिए कुछ न कुछ उत्तर शीघ्र भिजवा दिया जाना आवश्यक है।'

चरखारी वाली ने अपने सहज स्वर में कहा—'हमारा उनका आना-जाना बना रहता है; परन्तु आज जैसी अवस्था में मैं क़िले नहीं जाना चाहती।'

परिचारिका—'मैं समझी नहीं।'

चरखारी वाली—'इस उत्सव में अन्य जागीरदारों और सेठ साहूकारों तथा अफ़सरों की बहू-बेटियाँ इकट्ठी होंगी। मेरे पास कोई आभूषण नहीं हैं। सबकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ेगी।

भायका चरखारी न होता तो कोई बात न थी। अब नङ्गे हाथ और गला लेकर महलों में क्या मुँह दिखलाऊँगी ? वहाँ तमाम स्त्रियाँ कानाफूसी करेंगी। मेरी अवस्था की आड़ लेकर और लोगों का नाम वाद विवाद और गपशप में घसीटा जावेगा। मैं अपने कानों को कहाँ तक मूँदे रहूंगी ?'

आभूषणों की कमी के कारण उत्पन्न उद्विग्नता को शान्त करने के प्रयोजन से परिचारिका ने कई बार 'महाराज' शब्द से चरखारी वाली को सम्बोधित किया। वैसे भी परिचारिकाएँ इस शब्द द्वारा सम्बोधन किया करती थीं; परन्तु इतने अनेक बार नहीं।

'महाराज', परिचारिका ने कहा—'बात ठीक है। आप तो क्या मालिक के विषय में कोई भी छोटी-मोटी बात, हम लोग जो आपका निमक खाते हैं, नहीं सह सकते।'

चरखारी वाली—'मैं सोचती हूँ, किस प्रकार आज का निमन्त्रण बरकाया जावे। इसके बाद ही मैं शीघ्र चरखारी जाने की तैयारी करूँगी।'

परिचारिका—'महाराज, जब आज्ञा होगी, चरखारी का जाना हो सकता है।'

चरखारी वाली कुछ सोचने लगीं। सोचकर बोलीं—'महलों में प्रकट हुए बिना न रहेगा कि आभूषणों के न होने के कारण मैंने बहाना बनाया है।'

परिचारिका कुछ न कह सकी। उसने सिर नीचा कर लिया। चरखारी वाली की आँखों में फिर आँसू आ गए।

परिचारिका ने उत्तेजित होकर कहा—'मैं महलों में कहलाए भेजती हूँ कि शरीर अस्वस्थ है, इसलिए पीनस न भेजी जावे।'

गले को संयत करके चरखारी वाली ने सहमति दे दी।

परिचारिका ने लल्ली को अकेले में बुलाकर सब हाल सुना दिया और उसमें अपनी ओर से थोड़ा सा अतिरञ्जन करके चेतावनी दी—'मुसाहिबजू को सूचित न किया जाय और न सिपाहियों में बात फैलनी पावे। ख़बरदार!'

लल्ली ने रमू को अकेले में ले जाकर सब बात समझा दी और बात को फैलाने न देने का अनुरोध किया। रमू ने अपने वर्ग के लगभग सभी मिहतर सैनिकों को बात सुना दी और सबको चुप रहने का आदेश कर दिया। ये सैनिक अपने स्वामी की पत्नी की इस दशा पर क्षोभ में पड़ गए। लल्ली ने क़िले में ख़बर भेज दी कि अस्वस्थता के कारण चरखारी वाली सरकार उत्सव में सम्मिलित न हो सकेंगीं।

थोड़ी देर में नङ्गी तलवारें लिए हुए घुड़सवार आगे-पीछे महारानी की पीनस को घेरे मुसाहिबजू की गढ़ी के पास आगए। एक ने आगे बढ़कर समाचार दिया—'महारानी साहब पधारी हैं।'

मुसाहिब ने झटपट साफा बाँधा। कपड़े पहिनकर पीनस के पास दौड़ आए। मुजरा किया। ड्योढ़ी भीतर परिचारिकाओं ने चरखारी वाली को ख़बर दी। पीनस वाले पीनस को ड्योढ़ी के भीतरी आँगन में छोड़ कर चले आए। दूसरी पीनस से जो पीछे पीछे आई थी, महारानी की परिचारिकाएँ उतर कर गढ़ी

के भीतर चली गईं। चरखारी वाली ने स्थिति की आकस्मिकता को अपने सहज दृढ़ स्वभाव से सम्भाल लिया।

महारानी का आगत स्वागत किया और ऐसे यकायक आने पर आश्चर्य और हर्ष प्रकट किया।

महारानी ने कहा—'मैंने सुना कि आपका जी अस्वस्थ है, सो देखने चली आई। आज क़िले में बड़ा उत्सव है। आपका न होना मुझको खलता, इसलिए मैं स्वयं आई।'

चरखारी वाली ने विषण्ण स्वर में उत्तर दिया—'मैं महाराज अवश्य आती; परन्तु आज दोपहर से सिर और पेट में पीड़ा है, इसलिए विवश हूँ।'

औषधोपचार के लिए महारानी ने सम्मति दी। चरखारी वाली ने टालाटूली की। महारानी ने लिवाजाने का बहुत हठ किया; परन्तु वह चरखारी वाली के हठ पर विजय न पा सकीं। अन्त में उनके स्वास्थ्य की कामना करके महारानी क़िले को वापिस चली गईं।

भीतर जो कुछ घटित हुआ था, अतिरेक के साथ परिचारिका ने लल्ली को सुनाया और लल्ली ने रमू को। और सैनिकों को भी क़िले के निमन्त्रण को स्वीकार न कर पाने का असली कारण मालूम हो गया। अज्ञान के वातावरण में यदि कोई रहा, तो केवल मुसाहिब दलीपसिंह। उन्होंने चिन्ता के साथ परिचारिका द्वारा स्वास्थ्य का सम्वाद मँगवाया। उनको आश्वासन दिया गया—'चिन्ता की कोई बात नहीं, जी शीघ्र ठीक होता चला जा रहा है; परन्तु क़िले में जाना न होगा।'

— ९ —

रात्रिको क़िलेमें उत्सव हुआ—गाना-बजाना, हँसी-मज़ाक, आदर-सत्कार । चरखारी वाली सरकार की कल्पना क़िले के भीतर पहुँची । उन्होंने अपने को वहाँ पाकर देखा कि जितनी स्त्रियाँ उत्सव में शरीक़ हुई हैं, गहनों से लदी हैं । आनन्द और परिहास का स्रोत फूट पड़ा है । उनके तन पर कोई गहना नहीं है । दर्शिकाओं के मन पर यह आतंक बैठ जाय कि उन्हें सांसारिक रेलपेल के प्रति अत्यन्त तटस्थता है । परन्तु स्त्रियाँ उस आनन्द के वातावरण में भी कानाफूसी कर रही हैं—'चरखारी वाली सरकार के घर में चूहे दुलत्ती झाड़ते हैं । इनकी गांठ में कुछ नहीं । यह तो फ़ाक़ेमस्त हैं ।...

शरीर गरम हो गया और तिलमिली छूटने लगी । परिचारिकाएँ और नौकरानियाँ दिन-भर के परिश्रम के कारण गहरी नींद में धँस चुकी थीं । जगाकर बातचीत करने के लिए लालसा हुई ; परन्तु स्वाभाविक दृढ़ता ने लालसा को ठोकर दे दी, और वे फिर रो उठीं । थोड़ी देर बाद उन्होंने निश्चय किया कि इसी अठवारे में मैं, अपने मायके—चरखारी—जाऊँगी ।

भरतगढ़ के पहरुए जाग रहे थे । एक ओर रमू और उसका नाती पूरन पहरे पर न होते हुए भी सोए न थे । लल्ली खुर्राटे खींच रहा था । रमू और पूरन में बहुत धीरे-धीरे बातचीत हो रही थी ।

रमू—'बेटा, निमक से उऋण होने के लिए यह करना ही पड़ेगा ।'

पूरन—'बब्बा, पहले कभी तुमने ऐसा किया है ?'

रमू—'लड़ाइयाँ क्या हैं ? क्या वे कोई यज्ञ हैं ? डाके और लड़ाई में कोई अन्तर नहीं। इसीलिये डाके को बगावत और डाकुओं को अपने यहां बागी कहते हैं।'

पूरन—'काकाजू सुनेंगे, तो क्या कहेंगे ? वे मार डालेंगे।'

रमू—'उन्हें मालूम ही क्यों हो पावेगा ?'

पूरन—'कितने आदमी चाहिए ?'

रमू—'१०-२० बहुत होंगे।'

पूरन—'कोई-न-कोई काकाजू से कह देगा। शायद सरकार ही उन्हें भेद बतला दें।'

रमू—'ऐसा नहीं होगा। लल्ली को रहस्य में शामिल कर लेंगे।'

पूरन—'वह डाके का जेवर स्वीकार कर लेंगी ?'

रमू—'क्यों नहीं ? लड़ाई द्वारा प्राप्त लूट-पाटकी भूमि और सोना-चाँदी कौन ठुकरा देता है ? पुरुष नहीं छोड़ते हैं, तब स्त्रियाँ कैसे इनकार कर देंगी ?'

पूरन—'बब्बा, सरकार राजा की बेटी हैं।'

रमू—'राजा लोग ही तो, बेटा, यह सब कर सकते हैं। हम-तुम थोड़े ही इतना सब पचाने की शक्ति रखते हैं।'

पूरन—'और लोग तैयार हो जावेंगे ? ठकुरास का कोई साथ रहेगा ?'

रमू—'लड़ाई में कटने-मरने के समय यह सवाल नहीं किया जाता और न उस काम के लिए इस सवाल के करने की इस

अटक है। हमारी मिहतर-मण्डली ठकुरास के बीच में से निकल कर आगे बढ़ती है और हाथ करती है। इस काम में भी केवल हमारी ही मण्डली रहेगी। लल्ली को अवश्य साथ ले लेंगे, जिसमें हमारे ईमान की साख बनी रहे; कोई यह नहीं कह सके कि हम लोगों ने लूट के ज़ेवर में से छदाम-भर भी अपने लिए निकाल लिया।'

पूरन सहमत हो गया। अन्य मिहतरों को भी रमू ने सलाह में पक्का कर लिया। लल्ली को भी जगाया। चरखारी वाली सरकार की उदारता, पद की महानता और परिस्थितिजन्य उनकी क्षीणता लल्ली के मन को भी व्यस्त कर चुकी थी। अपने ऐसे मालिक को किसी प्रकार भी सुखी करने की वांछा उसको हौसला देती रहती थी। लड़ाई भी बड़े प्रकार की लूट-पाट ही है—रमू का यह सिद्धान्त लल्ली के धर्म में पहले से काफ़ी स्थान घेरे हुए था। इसलिए इस षड्यन्त्र में अग्रवर्त्ती होने का अवसर उसने अविलम्ब ग्रहण किया।

उसी समय स्थान और समय के प्रसंग पर चर्चा हुई। दतिया से बहुत दूर जाना किसी-न-किसी प्रकार की मुठ भेड़ को आमन्त्रित करना था। साँप मरे और लाठी न टूटे। होली खेल ली जावे और कपड़ों पर रंग न गिरने पावे। सीधी बात—डाका डाल कर ज़ेवर इकट्ठे किए जायं, चरखारी वाली सरकार की कमी की पूर्ति की जावे, मुसाहिबजू को मालूम न होने पावे और अपने शरीर भी घात-प्रति घात से बच कर सही-सलामत घर लौट आवें।

दलील थी। हमारे ही पेट भरने के लिए सरकार ने अपने गहने एक-एक करके साहूकारों को भेंट कर दिए हैं। हमारे ही पैसे साहूकारों के पास हैं। युद्ध और डाके में कोई अन्तर नहीं। इसलिए साहूकारों पर ही डाका डालना चाहिए। और यह वर्ग प्रतिघात करने की समर्थता भी कम रखता था।

दूसरे दिन टोह लगाने पर मालूम हो गया कि कुछ व्यापारी दतिया से बड़ौनी रुपया और जेवर लेकर जा रहे हैं। यह भी मालूम हुआ कि कुछ साहूकारों की स्त्रियाँ सोने-चांदी के प्रचुर आभूषण लिए हुए बैलगाड़ियों पर इन्हीं साहूकारों की आड़-ओट और भीड़-भाड़ में बड़ौनी किसी विवाह में शरीक होने के लिए जा रही हैं। रमू, लल्ली और अन्य मिहतर शिकारी सैनिकों ने समय और स्थान तय कर लिया।

— १० —

सन्ध्या के पहले ही गाड़ियाँ दतिया से बड़ौनी के लिए चल दीं। बैल छरहरे थे और गाड़ीवान मुस्तैद। गाड़ियाँ पास-पास चली जा रही थीं और उन पर आगे-पीछे चार बन्दूक़ वाले भी बैठे हुए थे। गाड़ियों में दतिया के कुछ साहूकार थे और स्त्रियाँ भी थीं। बहुत जल्दी करते-कराते कई घण्टे की देर हो गई। फिर भी अभी समय था। उड़नू की टौरिया के पास गाड़िया आ गईं।

उड़नू की टौरिया का भीम गौरव उस समय और भी सघन वृक्षों से परिवेष्ठित था। कितने श्रम और व्यय से इस टौरिया पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गई होंगी, और इसकी चोटी पर की बैठक और मन्दिर निर्माण के पहले एक साथ ही कितनी खीझ, कितनी लगन और कितनी भक्ति न अर्पित करा चुके होंगे। उड़नू की टौरिया का भीम गौरव, विशाल सौन्दर्य, एकान्त भक्ति और विकट प्रयास का मानो सामंजस्य है—मानव-हृदय के पराक्रम और विलास का समन्वय, कल्पना के मोह और त्याग का सम्मिश्रण।

उड़नू की टौरिया के पास से बड़ौनी के लिए मार्ग सघन बीहड़ वन में होकर गया है और कई जगह पथरीला है। बड़ौनी और दतिया के लगभग बीचों-बीच रामसागर नाम का एक बड़ा तालाब है, जंगल से घिरा हुआ, पहाड़ियों से आवृत्त। एक ओर से पानी का निकास है। निकास ने अपने नाले को गहराई दी है और निरन्तर जल। नाले का घाट औघट है।

इस नाले के पास आते-आते गाड़ियों को सूर्यास्त हो गया; परन्तु थोड़ा-सा प्रकाश बाक़ी था। मार्ग का भयवाला हिस्सा पार कर आए थे। नाले के आस पास झरबेरी इत्यादि छोटे-छोटे पेड़ों के बिखरे हुए समूह थे और घाट पर घनी करौंदी और अड़ूसे। नाले को पार कर के गाड़ियाँ घाट चढ़ी ही थीं कि आगे की गाड़ी के बैल बिचके और लीक छोड़कर बगल की एक चट्टान से जा टकराए। पीछे की गाड़ियाँ अटक गईं। दो गाड़ियों की ज्वांरियाँ उठ गईं। गाड़ीवान 'क्या हुआ, क्या है?' एक-दूसरे से पूछने लगे। यकायक २०-२५ आदमियों ने गाड़ियों को घेर लिया। सबके पास बन्दूकें थीं, सबके चेहरे पर ढाटियाँ चढ़ी हुई थीं। गाड़ियों में आगे-पीछे अगल-बगल बैठे हुए बन्दूक़ वालों ने अपनी बन्दूकें नीची कर लीं। भौंचक्के रह गए। सोचा, चारों एक ही गाड़ी में बैठे होते, तो मुक़ाबला कर लेते। साहूकारों ने बन्दूक़वालों को पुकारा; परन्तु उनके औसान डिग चुके थे। 'क्या है भाई, क्या है भाई?' कह कर चुप हो गए।

आक्रमणकारियों में ज़रा आगे एक लम्बा छरहरा मनुष्य था। उसने डाट कर कहा—'ज़रा भी चीं चपाट की, [illegible] भून डालूँगा। तुरन्त चुपचाप रुपया और गहना हवाले करो।'

साहूकारों की पुकार पर उत्तर देनेवाले बन्दूक़वालों को दो-दो डाकुओं ने घेर लिया। स्त्रियाँ रोने लगीं। डाकुओं के उस मुखिया ने कहा—'स्त्रियों को कोई नहीं छुएगा। गहना चुपचाप उतारकर रख दो।'

यात्री इधर-उधर हाथ डालने लगे। स्त्रियों ने पैर के चाँदी के जेवर उतारने का प्रयत्न प्रकट किया; परन्तु डाकुओं के सामने जेवर एक भी नहीं आया। वे लोग समझ गए कि यात्री किसी सहायता के आ जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसी अग्रवर्त्ती ने गाड़ी में बैठे एक साहूकार के सीने पर बन्दूक़ अड़ा दी और गहरे धीमे स्वर में बोला—'अभी तक भलमनसाहत से काम लिया, अब जैसा करते हो, उसके लिए तुमको रोनेवाले न मिलेंगे।'

एक बुड्ढी स्त्री भी यात्रियों के साथ थी। अनुनय के साथ वह बोली—'किसीको चोट-जरब मत पहुँचाओ। गहने ले लो और हमारे पास पकवान, मिठाई है, वह खाने के लिए ले लो।'

डाकुओं के अगुए ने कहा—'तो जल्दी करो।'

स्त्रियाँ रोती थीं और अपने जेवर उतार-उतार कर रास्ते की बग़ल में डालती जा रही थीं। आध घण्टे के भीतर गहनों का ढेर लग गया; परन्तु फिर भी कुछ जेवर यात्रियों के पास बच गया। स्त्रियों ने पकवान निकाले।

उसी अगुए ने कहा—'खाना नहीं चाहिए। लेते जाओ हम लोग ऐसा खाना नहीं खाते।'

रोते-रोते वही स्त्री बोली—'अब पकवान का ही क्या करेंगे छुआछूत हो गई है।'

डाकुओं में से एक ने, जो ज़रा पीछे खड़ा था, कहा—'किसी को भी नहीं छुआ है।'

एक गाड़ी में से एक स्त्री-कण्ठ से यकायक निकला—'ऐं!'

डाकुओं के मुखिया ने कहा—'हाँ, ठीक तो है। जेवर उतार कर हमारे हवाले न किया होता, तो छूना तो क्या और न-जाने

क्या-क्या न करते।'

डाकुओं ने जेवर इकट्ठे किए। गाड़ियाँ आगे बढ़ीं। जेवर लेकर डाकू तेजी के साथ वहाँ से चल दिए। स्त्रियाँ रोती-कलपती हुई और पुरुष माथा नीचे किए तथा आह भरते हुए बड़ौनी की ओर मन्द गति से चले। जिस स्त्री के मुँह से 'ऐं' निकल पड़ा था, उसने मार्ग को निष्कण्टक समझकर उसी गाड़ी में बैठी हुई एक स्त्री से धीरे से कहा—'गाड़ियों को इन लोगों ने छू लिया था, पकवान खाने लायक़ नहीं रहे।'

'क्यों ?'

'ये लोग नीची जाति के थे—भङ्गी।'

'कैसे मालूम ?'

'मैंने पहचान लिया है।'

— ११ —

डाकू सपाटे के साथ जङ्गल-जङ्गल होते हुए उड़नू टौरिया के पीछे से एक वृक्ष-समूह के निकट आकर ठहर गए। पहला काम जो उन्होंने किया, वह ढाटियों का उतारना था और दूसरा आग जला कर तम्बाकू का पीना। ढाटियों के उतारने पर रमू, पूरन, लल्ली इत्यादि अपनी-अपनी चिलम पीने लगे। रमू के चेहरे पर विजय का उन्माद था। लल्ली अनमना और चिन्तित था।

रमू ने कहा—'इतना ज़ेवर इकट्ठा कर लिया है कि हमारी सरकार को अब चिन्ता न रहेगी।'

लल्ली ने अनमने स्वर में पूछा—'चाँदी के ज़ेवर का क्या होगा? इसको सरकार के सामने पेश नहीं करना चाहिए।'

रमू ने तुरन्त उत्तर दिया—'उसको तुम ले लो। हमको बिल्कुल उज्र नहीं।'

लल्ली—'यह असम्भव है। हम लोग इसको नहीं ले सकते।'

रमू—'आप हमारे अफ़सर हैं। आप ले सकते हैं।'

लल्ली—'मैं अकेला?'

रमू—'नहीं तो क्या? हम मिहतर लोग न तो उस पकवान को ग्रहण कर सकते थे और न इन ज़ेवरों को छुएँगे। यदि सरकार को चाँदी का ज़ेवर नज़र नहीं किया जा सकता है, तो किसी कुएँ में फेंक दो।'

लल्ली—'कुएँ में फेंकने की अपेक्षा तो उसको बाँट लेना ही अच्छा है।'

रमू—'बट नहीं सकता, मैं पहले कह चुका हूँ।'

पूरन—'आप ले लो, माते ! बच्चा की बात मान जाओ।'

लल्ली—'है, कैसा ? बच्चा की बात मान जाओ ! कैसे मान जाऊँ ? या तो चाँदी का जेवर समान भाग से बटेगा या—या उसका जो-कुछ भी हो।'

रमू—'तब कुए में डाल दो। केवल सोने का लेते चलो और जवाब वाली के हाथों भीतर भिजवा दो। अपने पास इन चीज़ों को एक क्षण भी नहीं रखना चाहिए। ये अपनी नहीं हैं—अपने मालिक की हैं।'

इस पर कुछ समय तक सब चुप रहे। हुक्के की दूसरी चिलम पी जाने लगी। लल्ली सबसे पहले बोला—'कुए में नहीं फेकना चाहिए।'

रमू ने दृढ़ता के साथ अपने प्रस्ताव को दुहराया—'तब आप ले लो।'

लल्ली ने कहा—'मैं तो नहीं लूँगा ....।'

रमू इस 'तो' में लल्ली की प्रथम अस्वीकृति की तरमीम का आभास पाकर बोला—'तो फिर क्या किया जावे ?'

लल्ली ने अपना निश्चय प्रकट किया—'सरकार को ही नज़र करवाऊँगा। यदि उन्होंने लौटा दिया, तो फिर वैसा देखा जावेगा।',

रमू ने प्रश्न किया—'कहलवाओगे क्या ? असली बात ज़ाहिर न होने पावे, नहीं तो मुसाहिबजू बटवा डालेंगे।'

पूरन बीच में बोल उठा—'मैंने पहले ही कहा था।'

'चुप, चुप,' रमू ने धीमे और गहरे स्वर में ज़रा रोष के साथ कहा—'अभी तुझको बहुत-कुछ सीखना है।' फिर लल्ली से बोला—'माते, क्या कहलवाओगे आप ? जो-कुछ आप कहलावाओगे, वही बात, पूछे जाने पर, हम लोग भी कहेंगे। एकमत हो जाना चाहिए।'

इस बात को लल्ली और पूरन पहले ही सोच चुके थे। खरी करने के लिये ही चर्चा फिरसे छिड़ी थी। लल्ली ने कहा—'चिरूला के पास महाराज दलपतसिंह के समय का, सैकड़ों बरसों से, गड़ा हुआ द्रव्य पड़ा है। उसमें से कुछ अकस्मात हाथ लग गया है। उसीको नज़र कर रहे हैं।'

रमू—'और अभी बहुत-सा ज़मीन के भीतर चिरूला के आस पास कहीं पड़ा हुआ है। पता नहीं है।'

लल्ली –'मुसाहिबजू को इसलिए नज़र नहीं किया कि वे आधे से अधिक तो योंही बाँट-बूँट देंगे, बाक़ी शीघ्र ही अनाप-शनाप मदों में ख़र्च हो जावेगा। और राजा को ख़बर लग जावेगी, तो पूरा-का-पूरा, नहीं तो अधिकांश सरकारी खज़ाने में जमा कर देना पड़ेगा।'

रमू—'सरकार इस बात को मान जावेंगी और मुसाहिबजू से कुछ कहेंगी भी नहीं।'

सलाह पक्की करने के उपरान्त ही ये लोग दतिया की ओर चल दिए। भरतगढ़ दो-दो, चार-चार की टोलियों में पहुँच गए। हाज़िरी का कोई कड़ा नियम था नहीं, इसलिए किसी का सन्देह

जाग्रत नहीं हुआ। लल्ली ने चाँदी के जेवर अपनी कमर में बाँध लिए और सोने के सम्पूर्ण जेवर जवाब वाली के सिपुर्द कर दिए। जवाब वाली को 'चिरूला के पास गड़ा हुआ धन अचानक मिल जाने की बात' समझा दी और मुसाहिबजू पर प्रकट न होने देने के लिए आग्रह कर दिया—प्रकट होने पर कितने अनेक संकट सिर फोड़ने को खड़े हो सकते हैं, यह अच्छी तरह बतलाने की चेष्टा कर दी।

जवाबवाली ने वे सब आभूषण चरखारीवाली सरकार को दे दिए और लल्ली की बात जितनी उसकी समझ में आई थी, उनके विचार में बिठला दी। चरखारीवाली को हर्ष हुआ। वह उस हर्ष को छिपाने का प्रयत्न करने पर भी न दबा सकीं। परन्तु उस हर्ष की तली में से एक प्रश्न मन में कई बार उस रात उठा—'क्या यह सोना घर में रखने योग्य है?' इस प्रश्न की नोक को उन्होंने इस अनिवार्य सान्त्वना द्वारा झाड़ दिया—'भगवान ने घोर समय पर सहायता की है।'

रमू के मन में किसी प्रकार का अन्तर्विवाद खड़ा नहीं हुआ और न उसके साथी मिहतरों के मन में। लल्ली चाँदी के गहनों के उपयोग के विषय को लेकर प्रातःकाल तक बहुत इधर-उधर की सोचता रहा, सो न सका।

— १२

लुटे हुए लोगों में एक सुभद्रा भी थी। उसकी ससुराल में ब्याह था। कुछ व्यापारी गाड़ियाँ लेकर बड़ौनी जा ही रहे थे, यह सुभीता देखकर उसके पिता ने सुभद्रा को एक गाड़ी में बिठला दिया था। बड़ौनी पहुँचते ही पहला मुहल्ला वैश्यों का मिला। वहीं लगभग सब गाड़ियों को रुक जाना था। गाड़ियों के रुकते ही स्त्रियों ने करुण क्रन्दन प्रारम्भ किया। मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। 'क्या बात है, क्या हुआ ?' इत्यादि प्रश्न अनेक कंठों से एक साथ ही निकले। स्त्रियाँ गाड़ियों से उतरती जाती थीं और रोती जाती थीं। गाड़ीवान बैलों को चुपचाप खोल रहे थे। व्यापारी अपना-अपना सामान गाड़ियों में से उतारते चले जा रहे थे, परन्तु उत्तर कोई नहीं दे रहा था। मुहल्ले वाले चकित और जिज्ञासाविह्वल थे।

एक गाड़ीवान ने स्त्रियों के प्रति प्रश्न किया—'पकवान की गठरियों का क्या होगा ?'

'कुत्तों का डाल दो।'—सुभद्रा ने सिसकते-सिसकते, धीरे से उत्तर दिया।

गाड़ीवान ने कहा—'बैलों को खिलाए देते हैं।'

मुहल्ले वाले और भी हैरान हुए। व्यापारी अपनी गठरी-पुटरी इकट्ठी करके एक जगह खड़े हो गए, घरों में नहीं घुसे। मुहल्ले वाले ने व्यापारियों के बिलकुल पास आकर धीरे से पूछा—'बात तो बतलाओ।

'क्या बतलावें', एक व्यापारी ने कहा—'लुट गए।' और उसका गला भर आया।

'मुहल्ले वाला घबराहट के साथ बोला—'डाका पड़ गया है ? गांव के इतने समीप ! कोई मारा तो नहीं गया ?

'मारा तो कोई नहीं गया; पर ले सब गए।'

'कहाँ पर पड़ा ?

'रामसागर के नाले पर।'

'इतने निकट ! कौन लोग थे, पहचाना ?'

'हां, सुभद्रा ने पहचान लिया। दतिया के थे।'

'कौन थे ? कौन थे ?'

'यहाँ नहीं बतला सकते। घर में चलकर बतलावेंगे।'

गाड़ीवान ने पकवान खोल खोल कर बैलों के सामने डालने शुरू कर दिए। उक्त व्यापारी ने मुहल्ले वालों से अनुरोध किया—'हमें छुओ मत। नहा लें, तब घरों में घुसेंगे।'

मुहल्ले वालों ने पूछा 'क्यों ?'

व्यापारी ने रुखाई के साथ, परन्तु मन्द स्वर में उत्तर दिया—'कह दिया कि सब बात भीतर चलकर कहेंगे, धीरज तो धरो।'

पानी मँगवाकर सभी स्त्री-पुरुष और गाड़ीवानों ने स्नान किया। रेशम के कपड़ों पर जल के केवल थोड़े-से छींटे डाल दिए, बाकी सब कपड़े धोए। मुहल्ले वालों की कल्पना को सन्देह करने में विलम्ब नहीं लगा—हो न-हो मिहतरों ने डाका डाला है, और मिहतर किसी सरदार के सिपाही हैं।

सुभद्रा की ससुराल वाले घर में सब लोग एकत्र हुए। बैलों को बेड़ों में बाँधकर गाड़ीवान भी आ गए। चिलम के साथ साथ पूछ-ताछ और बात चीत चल पड़ी।

'यह कैसे निश्चय हुआ कि मुसाहिब दलीपसिंहजू के ही वे सब मिहतर थे ?

'सम्भव है, किसी और सरदार के भी मिहतर डाके में शामिल हुए हों; परन्तु मुसाहिबजू के जरूर थे और उनका दायाँ हाथ लल्ली लोधी भी था।

'गले के स्वर से ही दतिया वाली बहू ने पहचाना। और कोई प्रमाण तो है नहीं ?'

'जब कोई प्रमाण लेनेवाला दिखलाई पड़ेगा, तब प्रमाण भी दे देंगे।'

'वैसे आपस में तो सब बातें तय कर ही लेनी चाहिए।

'दतिया वाली बहू इन सब को जानती है। उसने पहचान लिया। जब एक डाकू ने पकवान के सम्बन्ध में कहा कि किसी ने छुआछूत नहीं की है, अपने पकवान लिए जाओ; तब हम भी लल्ली का स्वर पहचान गए। दतिया वाली के मुँह से तो यकायक 'ऐं' निकल पड़ा था और वह नाम भी लेने वाली थी; परन्तु अन्य स्त्रियों ने मना कर दिया, नहीं तो वह नाम ले-लेकर उन सबों को बातें सुनाती। हमारे ही क़र्ज़दार पर तो ये सरदार और सिपाही पलते हैं और हमारी ही जड़ खोदना चाहते हैं !'

'जब अटक पड़ती है, तो 'सेठजी' और 'साहजू' और जब अटक निकल जाती है, तब बनिया-बक्काल !'

'हमारी भी भगवान् कभी सुनेंगे।' मुहल्ले वाले सहानुभूति-पीड़ित थे। एक बोला—'इन अत्याचारियों के कुचलने वाले भी

राम ने उत्पन्न कर दिए हैं। इनका एक दिन ऐसा हाल होना है कि मार खाते जावेंगे और चीं तक नहीं कर पावेंगे।'

'अभी तो वे लोग और वे दिन दूर हैं।'

'नहीं तो; अङ्गरेज़ों से जो लिखा-पढ़ी रियासतों की हुई है, उसमें साफ़-साफ़ लिखा है कि लूट-मार बन्द कर दी जावे।'

'खैर, अब क्या करना चाहिए, सो बतलाओ। जागीरदार साहब के पास चलें। डाका उन्हीं की हद में पड़ा है।'

'देखो, ऐसा न होवे कि उल्टी आँतें गले पड़ें। ठाकुर ठाकुर सब एक हैं और मुसाहिबजू चरखारीवालों के दामाद हैं, राजा के भाई-बन्द।'

'परन्तु हमारे जागीरदार हम लोगों के लिए कट मरेंगे।'

'आशा तो ऐसी ही है। इनके पुरखे दीवान···जू हम लोगों के लिये जूझ पड़े थे। अब भी उन्हीं के वंशजों का सहारा है। नहीं तो हमने तो मऊ चले जाने का निश्चय कर लिया है। वहाँ नातेदारी है। झाँसी के मराठों का राज्य है। इतना अन्धेर नहीं है।'

अन्त में व्यापारी-समुदाय ने बड़ौनी के जागीरदार के सामने अपनी फ़रयाद का पेश करना तय किया, और वे सब-के-सब उसी समय उनकी गढ़ी में पहुंचे। मुजरा करने के बाद व्यापारियों ने रो-रो कर अपनी व्यथा जागीरदार को सुनाई और अपना सन्देह भी प्रकट किया।

जागीरदार मसनद से टिके हुये देर तक हुक्का पीते रहे। बहुत शान्त और धीमे स्वर में बोले—'बहुत बुरा हुआ। कल राजा के पास समाचार पहुंचना चाहिये।'

व्यापारियों के मुखिया ने विनय की 'महाराज हमारी पहुँच तो महलों तक नहीं हो सकती। हमको तो दरबाजे पर ही दुत्कार दिया जावेगा।'

जागीरदार ने दृढ़ता के साथ कहा—'हमारी पाती लेते जाओ। पाती राजा के दीवान के हाथ में देना।'

मुखिया हाथ जोड़ कर बोला—'दीवान साहब पाती मुसाहिबजू के पास पहुंचा देंगे और फिर हमारी और भी खराबी होगी।'

जागीरदार मूँछों पर हाथ फेर कर कुछ सोचने लगे।

मुखिया ने सोचा कि जागीरदार साहब की पाती भी हाथ से खिसकी। बोला—'महाराज जैसी मर्जी हो। मैंने बिनती इसलिए की कि मुसाहिबजू को अपने मिहतर इतने प्यारे हैं कि वे कोई न्याय नहीं करेंगे। हाँ, राजा के हाथ में पाती पहुंच जाय, तो कुछ हो जावेगा; नहीं तो हमको हुकुम मिल जावे, तो हम लोग अपनी बंजी-भौरी और कहीं कर खायेंगे।' यह कह कर मुखिया ढार मार कर रोने लगा।

जागीरदार को डाके की फ़रियाद पर इतना क्षोभ नहीं हुआ जितना व्यापारियों के बार-बार रो पड़ने पर। वह डाट-डपट कर उन लोगों को चुप करना चाहते थे; परन्तु उनके संयम ने क्षोभ को दूसरा मार्ग पकड़ा दिया। कहने लगे—'मुझको तुम्हारा औरतों की तरह रोना अच्छा नहीं लगता। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे साथ बड़ी ज्यादती हुई है और हम लोगों का बड़ा अपमान हुआ है; परन्तु हम लोग अभी जीवित हैं। हम तुम्हारे लिए

राजा से भी टक्कर लेने को तैयार हैं। हमारे जंगल, चुंगी-चबूतरे न्यायालय सब राजा से अलग हैं। इसलिए हमारी पाती राजा के ही पास ले जाओ और कल ले जाओ। ऐसा मत सोचो कि तुम्हारी पीठ पर कोई नहीं है। बड़ौनी में रहो और सुख शान्ति के साथ रहो। कभी हमारे सामने बड़ौनी छोड़ने की बात मत करना।,

व्यापारी लोग जागीरदार के पास से चले आए। दूसरे ही दिन उनको जागीरदार की पाती मिल गई। परन्तु राजा के पास यह पाती दो-तीन दिनों के बाद पहुँची। पाती पहुँचाने के लिये व्यापारियों को काफी परिश्रम, चातुर्य और पैसा भी खर्च करना पड़ा। पाती में केवल डाके का वृत्तान्त था। मुसाहिबजू के सिपाहियों पर उस में कोई सन्देह प्रकट नहीं किया गया था; परन्तु यह स्पष्ट तौर पर लिखा गया था कि दतिया के किसी सरदार के मिहतर सिपाहियों ने डाका डाला है।

राजा को मुसाहिबजू के मनचले सिपाहियों और मुसाहिबजू की निर्धनता का हाल मालूम था, इसलिए उनको सन्देह करने में विलम्ब नहीं हुआ। परन्तु उन्होंने बात मन में रख ली। व्यापारियों को उत्तर दिया गया—'घबराओ मत, जाँच-पड़ताल की जावेगी और न्याय होगा।'

— १३ —

डाका पड़ने के तीसरे दिन मुसाहिब दलीपसिंहने परिचारिका द्वारा अपने आने का समाचार भीतर भेजा। चरखारी वाली सरकार ने अभ्यास-क्रमानुगत अभिनन्दन के उपरान्त लल्ली के हाथ से आए हुए सब ज़ेवर उनके सामने रख दिए। उस समय तक उन्होंने ज़ेवरों का निरीक्षण नहींकिया था। उन ज़ेवरों में वे जड़ाऊ पहुँचियाँ भी थीं, जिनको लल्ली ५००) में कुंजी के यहाँ कुछ ही दिन पहले गिरवी रख आया था।

पहुँचियों पर दृष्टि पड़ते ही चरखारी वाली सरकार का हर्ष और उत्साह चिन्ता और खेद में पलट गया तथा मुसाहिबजू का कुतूहल परिताप में; क्योंकि दोनों को एक ही प्रकार के निश्शंक सन्देह पर पहुँचने में एक क्षण से अधिक नहीं लगा। डाका पड़ने की ख़बर चरखारी वाली सरकार को उनकी परिचारिकाओं ने घटे-बढ़े रूपमें दूसरे ही दिन दी थी। मुसाहिबजू के भी कानों में उसकी भनक पड़ गई थी। परन्तु जिस निष्कर्ष पर वे दोनों सहज ही पहुँचे थे, कहना उनमें से कोई भी नहीं चाहता था।

चरखारी वाली ने सबसे पहले मुँह खोला। बोलीं—'लल्ली माते कहते थे कि चिरूलाके पास यह सब माल मिला है।'

आत्म-विस्मृत का आश्रय लेकर मुसाहिब ने भी कहा—'चिरूला के पास महाराज दलपतसिंह के समय का बहुत ख़ज़ाना गड़ा है। वे नर्मदा-पार दक्षिणसे बहुत-सा द्रव्य ले आए थे। बड़े वीर थे। मुग़लों की सेना के नायक थे। गोलकुण्डा, बीजापुर

आदि की विजय उन्हीं के प्रताप से हुई थी। उनकी सेना में बहुत सिपाही और सरदार रहते थे। उनका अधिकांश समय दतियाके बाहर ही बीता था। मुग़लोंके साथ रहते हुए भी वे कभी उनकी छावनी के भीतर अपनी छावनी नहीं रखते थे।'...

चरखारीवाली सरकारने कर्त्तव्यवश जेवर मुसाहिबके सामने पेश कर दिए थे; परन्तु वे भी उनके विषय में बहुत कम चर्चा करना चाहती थीं, इसलिए मुसाहिबके ही प्रसंगको जारी रखने के उद्देश्यसे बोलीं—'बड़ौनी वाले इस राज्य के जागीरदार होते हुए भी अलग-अलग विलग-से ही रहते हैं!'

मुसाहिब-'हाँ, उनकी चुंगी, डांग, आबकारी, अदालत सब न्यारी हैं। वे लोग दशहरे तक के दरबार में आने से आनाकानी करते हैं।'

चरखारीवाली—'बैसे उनके हाथमें कुछ अधिक फ़ौज-फाँटा तो है नहीं।'

मुसाहिब—'परन्तु वे लोग कलेजे के पक्के हैं। अड़ जाते हैं। इधर राजा भैयाबन्दी की बात सोचकर उनका नाश करने से डरते हैं। दूसरे, समय भी अब नाजुक आ गया है। ग्वालियर के सिन्धिया और मालवे के अंगरेज़—इनका भी तो ख्याल रखना पड़ता है। जहाँ तक बने, राज्य के सरदारों को हाथ में रखने की ज़रूरत है।'

चरखारीवाली का ध्यान फिर जेवरोंकी ओर गया। चिरूला के पास के गड़े हुए खज़ाने के साथ विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित करने के मोह से बोलीं—'क्या इस खज़ाने का पता राजा को नहीं है?'

मुसाहिब ने उत्तर दिया—'खज़ाना एक ही जगह गड़ा नहीं है। ऐसा मत है कि वह चिरूलाके एर फेर में अनेक स्थानों में दबा हुआ है। कोई देवता उसकी रक्षा करते हैं। भाग्य से ही कभी किसी को मिल जाता है। राजाने कई बार खुदाई करवाई। परन्तु कभी कुछ हाथ नहीं लगा।'

चरखारीवाली ने दृढ़तापूर्वक कहा—'तब यह भाग्य से ही लोगों को प्राप्त हुआ है। इसमें राजा का कोई भाग नहीं।'

मुसाहिब बिचकते हुए मनको पक्का करके बोले—'राजा के भाग्य का होता, तो उनको कभी का मिल गया होता।' परन्तु चिरूलाके दफ़ीने और राजा के भाग्यकी सम्बन्ध-भिन्नता की बात कहते हुए भी उनका ध्यान फिर बरबस पहुंचियों के वास्तविक इतिहास की ओर खिचा। मुसाहिब ने कहा—'रमू इत्यादि इतना खज़ाना चिरूला से ले आए और मुझसे ज़िक्र तक नहीं किया!'

चरखारी वाली उस चर्चा को दूसरी मोड़ देना चाहती थीं; परन्तु विवश हो गईं। पहुंचियाँ उनको भी खटक रही थीं। प्रयत्न करने पर भी उन्होंने उसी चर्चा को विकसित किया। बोलीं—'साधारण-सी बात समझ कर आपसे नहीं कहा होगा। मेरे पास यह सब उन्होंने उसी दिन भेज दिया, जिस दिन शिकार खेलते खेलते उनको मिला।'

मुसाहिब—'रमू या लल्ली किसीने पहले कभी ऐसा नहीं किया था।'

चरखारीवाली—'परन्तु वे लोग हैं पक्के स्वामिधर्मी।'

मुसाहिब—'इसिलिए मनको और भी कष्ट हो रहा है।'

चरखारी वाली—'उन लोगों ने जितना उखाड़ा, सब यहाँ

भेज दिया। अपने लिए एक सीत भी नहीं रखा।'

मुसाहिब—'राजा सुनेंगे, तो बहुत झंझट बढ़ेगा।'

चरखारीवाली—'हमारे चाकर कबूल नहीं करेंगे, फिर राजा क्या करेंगे? और फिर आपके मनको बिगाड़ने की राजा हिम्मत नहीं करेंगे।'

मुसाहिब—'यह सब ठीक है; पर जो कुछ इन लोगों ने किया, वह बहुत बुरा किया।'

चरखारीवाली—'अपने लिए कुछ नहीं किया।'

मुसाहिब—'तभी मुझसे कुछ नहीं कहा। क्या आपसे पूछ कर इन लोगों ने यह खजाना ढूँढ़ा?'

चरखारीवाली—'मेरी अनुमति से बाहर क्या कोई भी काम होता है?'

मुसाहिब झेंप गए। पान मँगवाने के लिए कहा। परिचारिका पान लगा कर रख गई। तब तक पति-पत्नी बार-बार जेबरों पर से आँख उचटा-उचटा कर इधर-उधर देखते रहे। पान चबाते-चबाते मुसाहिब ने कहा—इसी प्रकार की पहुँचियाँ, आपकी भी थीं।'

'हाँ', चरखारीवाली सरकार बात मिलाने की चेष्टा करती हुई बोलीं—'आकार-प्रकार में बहुत से गहने अकस्मात् मिल जाते हैं।'

मुसाहिब ने ज़रा ग्लानि के साथ कहा—'परन्तु आप की पहुंचियाँ तो घर में हैं नहीं।'

चरखारीवाली—'नहीं हैं, और ये उनसे मिलती जुलती हैं; परन्तु ये और वे एक ही नहीं हो सकतीं।'

मुसाहिब– 'आशा तो यही करनी चाहिए लेकिन'

चरखारीवाली--'क्या ?'

मुसाहिब—'लेकिन यदि यह सब चिरूला के जंगल में गढ़े हुऐ दफ़ीने में से नहीं आया है तो बड़ौनोके निकट डाले हुये डाके की सम्पत्ति है।'

चरखारीवाली—'निश्चय ही हमारे आदमी ऐसा भीषण काम नहीं कर सकते हैं।'

मुसाहिब—'मेरा भी विश्वास है कि हमारे सिपाहियों ने डाका नहीं डाला; यह माल उनको मिला चाहे जिस प्रकार हो। चाहे उन्होंने डाकुओं से लड़ लड़ा कर छीना हो।'

चरखारीवाली—'यह भी बिलकुल संम्भव है।'

— १४ —

१०–१२ दिन बीत गए; परन्तु राजा ने कोतवाल को कोई आज्ञा नहीं दी। दीवान से भी कुछ नहीं कहा। कोतवाल, राज्य में पुलिस का सबसे बड़ा हाकिम था। वह न्यायाधीश भी था। एक अमीन भी रहता था। जिन मामलों पर राजा विचार करवाना चाहते, उनका निर्णय अमीन करता था। अमीन के हाथ में दीवान के नीचे माल-विभाग भी था; पर राज्य-कर वसूल करने में कोतवाल सहायक था, और इस अवस्था में वह माल, फ़ौज़दारी और पुलिस का शासक हो जाता था। कोतवाल केवल दीवानी मामलों में दख़ल नहीं देता था। यह विभाग अमीन के अधिकार क्षेत्र में था, और ये सब दीवान के अधीन थे। परन्तु जहाँ किसी सरदार या प्रभावशाली व्यक्ति के दोषपर विचार करने का प्रश्न उत्पन्न होता, वहाँ राजा के अधिकार-वृत्त की बात आ जाती थी और फिर कोतवाल, अमीन, दीवान कोई कुछ नहीं कर सकते थे। इन तीनों अधिकारियों के वृत्त साफ़ तौर पर बँटे हुए हों, ऐसा नहीं था। कभी–कभी तो सड़ी-से-सड़ी बात में भी राजा दख़ल दे बैठते थे और कभी-कभी अपने अधिकार-वृत्त के प्रसंग की भी अवहेला कर डालते थे।

१०–१२ दिन तक राजा के कुछ भी न करने के कारण दतिया का व्यापारी वर्ग जल उठा। जलन मन-की-मन ही में नहीं रही; किन्तु वार्तालाप और चर्चा के रूप में कहीं-कहीं फूट भी निकली। दीवान के कान में बात पड़ी, कोतवाल ने भी सुनी और अमीन को भी मालूम हो गया। सयाने लोग सकेत में

और निडर और ज़िम्मेदार लोग खुल कर मुसाहिबजू और उनके मिहतर सिपाहियों पर अभियोग लगाने लगे। पर यह सब गलियों और घरों की पौरों में ही होता था । चौराहों तक बात नहीं आई थी।

कुंजी को डाके का सब समाचार दूसरे ही दिन मिल गया था। वह बड़ौनी गया और ब्याह में शामिल हुआ। सुभद्रा मिली और उसने सब चिट्ठा सुनाया। जब वह लौटकर आया, तो उसने भी कोतवाल, अमीन, दीवान सबको अपनी फ़रियाद सुनाई। परन्तु 'हाँ, हूँ' के सिवा किसी ने कुछ सहायता नहीं की। सुभद्रा भी ससुराल से लौट आई। वह जब कुंजी को बड़ौनी में मिली थी, तब रोई और दतिया आई, तब भी रोई।

लल्ली के वर्ग में भी डाके की खबर फैल गई। मुसाहिबजू के अन्य सैनिक इस बात के अनुसन्धान का प्रयत्न करने लगे कि हमारे बेड़े के कौन-कौन लोग उसमें शरीक हुए थे; परन्तु मिहतरों ने पक्की गाँठ बाँध रखी थी, इसलिए ठीक पता नहीं लग सका।

लल्ली चाँदी के जेवर सयत्न रखे हुए किसी धुन में सुभद्रा के मकान के पास से कभी-कभी निकल जाता था। एक दिन अवसर पाकर लल्ली सुभद्रा के पास गया। वह अकेली थी। बोला—'आज अनमनी कैसी हो?'

सुभद्रा की आँखें एकदम घूम गईं; परन्तु एक पलके खण्ड में ही उसने अपने को सँभालते हुए उत्तर दिया—'आजकल गरमी बहुत पड़ रही है। जी बहुत स्वस्थ नहीं रहता।' और वह मुस्कराई।

उस मुस्कराहट में किसी गूढ़ संकेत को लक्ष्य करके लल्ली ने कहा—'इधर बहुत दिनों से तुम्हारी खोज में था। आज मुश्किल से अवसर मिल पाया है।'

सुभद्रा के नेत्रों में थोड़ी-सी कर्कशता, गले में संयम और होठों पर हँसी थी। बोली—'तुम्हें मालूम तो था कि मैं बड़ौनी गई थी। ब्याह की बिदाइयाँ होते ही लौट आई।'

लल्ली के भीतर एक उमग थी। उसी की प्रेरणा से उसने कहा—'पहले नहीं मालूम था। हाल में सुना कि तुम बड़ौनी ब्याह में गई हो।'

सुभद्रा ने आँखों की कर्कशता को भी वश में कर लिया। गले में संयम ने थोड़ा-सा मिठास उत्पन्न किया और होठों पर हँसी और भी विस्फीत हुई। बोली—'काहे के लिए ढूँढ़ रहे थे? कैसे छुट्टी मिल गई?'

लल्ली की उमंग में उतावलापन आ गया। बोला—'हम और तुम पहले किस तरह और कितने अधिक मिलते रहते थे, इसको कैसे भूल सकता हूं? मैं ग़रीब सिपाही हूँ। तुम साहूकार की लड़की हो। तुम्हारी ओर से रुखाई देखकर ही मैं ज़रा हिचकने लगा था।'

'और अब देखकर मन बढ़ने लगा?'—सुभद्रा ने संयत मधुरता के साथ प्रश्न किया।

लल्लीने और भी उमंग के साथ उत्तर दिया—'मन पीछे तो कभी नहीं रहा। तुम्हारी रुखाई कभी-कभी दबका देती थी और इधर काम भी बहुत लगे रहे।'

सुभद्रा की आँखों में फिर एक क्षण के लिए कठोरता आई

और कंठ में कुछ जा अटका; किन्तु उसने तुरन्त फिर मुस्करा कर कहा—'मैं तो वैसी ही हूं; लेकिन तुम्हीं बदल गए हो।'

लल्ली ने प्रमत्त स्वर में पूछा—'कैसे।'

सुभद्राने स्वर की मादकता को परख लिया। बोली—'अपने भीतर वाले से पूछो।'

'वह तो तुम्हारे पास है।' लल्ली ने और भी प्रसन्न होकर कहा और कमर की फेंट खोल कर चाँदी के पैजने और कुछ आभूषण उसके सामने रख दिए और इधर-उधर देखने लगा।

सुभद्रा को उन आभूषणों में से अधिकांश को पहचानने में देर नहीं लगी। संयम करने पर भी आँखों में कर्कशता, होठों पर सिकुड़न और कंठ में रुखाई आ गई। बोली—'उस दिन जब हम लोगों को लूटा, तब भीतर वाला कहाँ था?'

लल्ली का सारा शरीर सन्न हो गया। आँखों से तिलमिली छूट गई और सिर के बालों से पसीना। कुछ कहना चाहता था; घिग्घी बँध गई।

सुभद्रा ने सरोष कहा—'मैंने तुम्हारा और रमू का स्वर चीन्ह लिया था। चाहती तो उसी दिन पकड़वा देती; परन्तु न जाने क्यों रुक गई। तुम बड़े नीच हो।'

'नीच तो नहीं हूँ', लल्ली ने नीचा सिर किए हुए कहा—'मैंने कुछ नहीं किया।'

'सब अपराधी इसी प्रकार का जवाब दिया करते हैं।' सुभद्रा तड़क कर बोली—'तुमको मेरे पास आने में शरम भी न आई!'

लल्ली ने सिर ज़रा ऊँचा किया, कहा—'तुम चाहे जो कुछ

कहो, मैंने तुम्हारे साथ कोई बुरा बर्त्ताव नहीं किया। मैं तुमको जितना चाहता हूँ, भगवान जानते हैं।'

सुभद्रा का क्रोध कंठ में समा गया। भर्राए हुए गले से बोली-'भगवानको क्यों लूट खसोट में घसोटते हो?' फिर तीक्ष्ण व्यंग की मुस्कराहट के साथ कहती गई—'सब जेवर उतार कर रख दो। 'अभी तक भलमनसाहत से काम लिया, अब जैसा करते हैं, उसके लिए रोने वाले भी न मिलेंगे।' 'शरीर मत छुओ, परन्तु प्राण लेलो।' 'भीतर वाला तो तुम्हारे पास है!' 'तुमको जितना चाहता हूँ, भगवान जानते हैं!' 'माते, लूटो और पत्थरों से कूटो।'

लल्ली ने और सिर उठाकर कहा—'जो-कुछ भी हुआ हो उसका मुझको बहुत रंज है। परन्तु मैंने अपने लिए कभी कुछ नहीं किया।'

'मेरे लिए?'—कठोरता के साथ सुभद्रा ने प्रश्न किया—'पहुँचियाँ किसको दे आए? रुपए लेकर आना और मेरे पिता से कहना कि पहुंचियाँ लाओ। मेरे ही पैजने मुझको देने आए हो! यदि राजा न्याय नहीं करेंगे, तो ईश्वर के यहाँ न्याय होगा।'

लल्ली की आँखों से आँसू बहने लगे।

सुभद्रा ने और भी रुखाई के साथ कहा – 'तुम-जैसे झूठे और अधर्मी हो, वह मुझको हाल में मालूम हुआ।'

लल्ली साहस के साथ बोला—'मैं न झूठा हूं और न अधर्मी। मैंने एक पैसा भी नहीं छुआ।'

सुभद्रा ने कहा—'जिनके ऊपर तुमने डाका डाला, वे लोग गहने कहां से चुरा कर लाए थे?'

लल्ली को कुछ और साहस हुआ। बोला—'यदि मैं जानता कि किसके ऊपर क्या होने वाला है, तो यह सब कभी न हो पाता। माफी चाहता हूँ।'

इसके आगे लल्ली कुछ न कह सका। सिसक सिसक कर रोने लगा। सुभद्रा का क्षोभ कम नहीं हुआ। उसने कहा—'यह सब उठाले जाओ और जिसको पहुंचियाँ दे आए हो, उसी को यह भी दे आओ।'

लल्ली धीमे स्वर में बोला—'पहुंचियाँ वापस ले आ सकता हूँ।'

'किसको दे आए हो?' सुभद्रा ने प्रश्न किया।

'यह मत पूछो। हाथ जोड़ता हूँ।' लल्ली ने विनय की।

सुभद्रा ने उसी रुखाई के साथ कहा—'तुम यहाँ से जाओ। मेरे पिता आने वाले होंगे। अभी पकड़े जाओगे।'

लल्ली मूढ़ हो गया। घुटनों पर सिर रख कर आए गए विचारों में तल्लीन। सुभद्रा झाड़ू लेकर आँगन बुहारने लगी। थोड़े समय के पश्चात् बोली—'अब किसके लिए रो रहे हो? अकेले मत रोओ। जिसको पहूंचियाँ दे आए हो, उसके साथ रोओ।'

लल्ली ने घुटनों से सिर ऊँचा उठाया। सुभद्रा की ओर एक क्षण देखा। फिर उसकी दृष्टि गहनों पर गई, फिर द्वार की ओर। सामने से कुंजी आता दिखलाई पड़ा। लल्ली ने गहने बांधकर चले जाने का निश्चय किया। वह गहनों की ओर हाथ बढ़ाना ही चाहता था कि कुंजी भीतर आ गया। सुभद्रा अकचका गई। परिस्थिति को अपने बूते से बाहर समझ कर उसने जरा कातर

दृष्टि से लल्ली की ओर देखा।

कुंजी ने आते ही पहले गहनों पर आँख डाली। आश्चर्य के साथ उसने लल्ली से पूछा—'यह कौन सा गहना है? कहाँ से लाए हो? काहे के लिए लाए हो?' लल्ली के उत्तर देने के पहले ही कुंजी ने फिर कहा—'यह गहने तो पहचाने हुए हैं।'

लल्ली साहस बटोर कर दृढ़ता के साथ बोला – 'मैं गिरवी रखने के लिए ये सब गहने लाया हूँ।'

सुभद्रा ने ज़रा चैन की साँस ली।

कुंजी ने कहा—'मेरे पहचानने में शायद कुछ ग़लती हुई हो। बेटी, तुम पहचान सकती हो?'

लल्ली ने सुभद्रा की ओर देखा। सुभद्रा के मुँह से यकायक 'हाँ' निकल गई।

'किसके हैं?' कुंजी ने प्रश्न किया।

'मेरे।' सुभद्रा ने सहज उत्तर दिया।

कुञ्जी ने लल्ली से बनावटी मिठास के साथ पूछा—'माते, तुम्हारे पास ये जेवर कैसे पहुंचे? किसके लिए रुपया उधार लेने आए हो?'

'अपने लिए।' लल्लीने बिना हिचकिचाहटके उत्तर दिया—'मुझे रुपये की अटक है। अपने लिए रुपया उधार लेने आया हूं। जेवर मेरे हैं। सुभद्रा से बड़ी देर से कह रहा हूं। इन्होंने कहा कि तुम आ जाओ, तब गिरवी रखने की बात हो सकेगी।'

'इसने यह नहीं कहा कि जेवर मेरे हैं?' कुञ्जी ने रुखाई के साथ पूछा।

लल्ली ने उत्तर दिया—'कहा था। मुझसे ये रुष्ट भी हुईं।

इसीलिए अब तक तुम्हारी बाट देखता बैठा रहा।'

'बेटी', कुञ्जी ने करारे स्वर में सुभद्रा से कहा—'तुमने डाकुओं को पहचान लिया था, क्या उनमें माते नहीं थे?'

'नहीं थे', सुभद्रा ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—'मेरा सन्देह-मात्र था। रमू अवश्य था, सो मैंने उसी समय बतला दिया था।'

'परन्तु', कुंजी ने कहा—'तुमने यह भी तो कहा था कि मिहतरों के अलावा मुसाहिबजू के और सिपाही भी थे।'

सुभद्रा बोली—'हाँ, कहा था; पर यह नहीं कहा था कि उनमें माते थे।'

कुंजी कुछ सोचने लगा। लल्ली उँगली के नाखून से धरती कुरेदने लगा। सुभद्रा झाड़ू देने लगी।

कुंजी ने कहा—'जो-कुछ भी हो, ये जेवर तुम्हारे नहीं हैं, मेरी लड़की के हैं। हो सकता है, तुम डाकुओं के साथ में न रहे हो; परन्तु माल तुमने डाकुओं से पाया है। राजा के सामने चलना होगा।'

सुभद्रा भीतर चली गई।

लल्ली बोला—'चाहे जहाँ चले चलो। जेवर मेरे हैं। क्या जेवरों पर तुम्हारा नाम पड़ा है? जेवर एक-से नहीं हो सकते?'

कुंजी ने मुस्कराकर पूछा—'तुम्हारे पास कहाँ से आए? किस सुनार से बनवाया था?'

लल्ली चलने को हुआ। बोला—'जब राजा पूछेंगे, तो बतला दूँगा।'

कुंजी ने साहस के साथ कहा—'यहाँ से ले जाने न पाओगे। यह न समझना कि मैं कोरा बानियाँ हूँ।'

'रखे रहो', लल्ली ने जाते-जाते कहा—'मेरे भाग्य के होंगे, तो मुझको मिल जायेंगे।' और वह चला गया।

लल्ली के चले जाने पर कुञ्जी ने सुभद्रा को बुलाया। सुभद्रा बुलाने का कारण समझ गई। कुञ्जी से क्षुब्ध स्वर में पूछा—'उस दिन तुमने बिना सन्देह के कहा था कि लल्ली डाकुओं में था, आज क्या उससे डर गईं? संसार में यही अकेला राज्य नहीं है, झांसी चले जायेंगे। ग्वालियर और इन्दौर हैं। मालवे में अंग्रेज़ हैं। अब असह्य हो गया है।'

सुभद्रा ने कहा—'मैंने लल्ली से भी कह दिया कि तुम डाकुओं में थे, पर उसने गंगा जी की सौगन्ध खाई, इसलिए मुझको विश्वास हो गया।'

कुञ्जी ने आश्चर्य प्रकट किया—'यदि रमू और उसके सारे मिहतर गंगा जी की कसम खा लें, तो क्या उनका भी विश्वास कर लोगी?'

'नहीं करूँगी', सुभद्रा ने उत्तर दिया—'लल्ली की और बात है। वह बड़ी जात का है।'

'और ये जेवर?'—कुञ्जी ने फिर प्रश्न किया।

'ये मेरे हैं, मेरे-जैसे ही हैं—जी में निश्चय होता है कि ये मेरे ही हैं।'—सुभद्रा ने उत्तर दिया।

कुञ्जी ने कुछ सोचकर कहा—'सम्भव है, लल्ली डाकुओं के साथ न गया हो और मिहतरों ने परस्पर गहने बांटकर कुछ इसको दे दिए हों। जो-कुछ भी हो, ये पैजने निश्चय ही तुम्हारे हैं। इनको दतिया में ही सुनार से ढलवाया था। उसका निशान पड़ा है। मैं चीन्हता हूं। सुनार अभी जीवित है। वह हज़ार

गहनों में अपना बनाया हुआ गहना पहचान लेगा।'

कुञ्जी ने पैजनों को उलट-पलटकर उक्त निशान को पहचान लिया। अब सुभद्राको सन्देह करने के लिए कोई कारण न रहा।

कुंजी के मनमें तो कोई कारण था ही नहीं। उसको अपनी लड़की की स्मृति और लक्ष्मी की सौगन्ध पर सन्देह होने लगा। वह उन गहनों को बांधकर दीवान के पास गया। दीवान ने कोतवाल को बुलाया। दोनों कुंजी के साथ राजा के पास पहुंचे। साथ में कुञ्जी ने नगर के और सेठ भी ले लिए। इनमें जिनपर डाका पड़ा था, वे भी थे और जिन पर नहीं पड़ा था, वे भी।

सेठों की फरियाद पर राजा ने न्याय का आश्वासन दिया। व्यापारियों में दो-तीन लक्षपती भी थे। राजा के यहां उनका मान था। उन्होंने हिम्मत करके मुसाहिबके मिहतरोंको अपराधी ठहराया। राजा दीवान की ओर देखकर बोले—'हमारे ही सिपाही हमारे आदमियों को सतावें!'

दीवान—'अन्नदाता, इसकी छानबीन की जावेगी।'

राजा—'मुसाहिबजू का नौकर डाके के गहने गिरवी रखने आया। अब और छानबीन क्या होगी?'

दीवान—'महाराज, यह प्रमाणित होना चाहिए कि वे जेवर डाके के हैं।'

दीवान जानता था कि मुसाहिबजू चरखारी के राजा के दामाद हैं और राजा के दरबार तथा मन में उनके पदका महत्व है। परन्तु राजा को अपने भाई बन्दों से बढ़कर अपने राज्य की भी चिन्ता थी। इसलिए जरा क्रुद्ध स्वर में बोले—'इस घटना को हुए काफी समय हो गया। अभी तक कुछ नहीं किया गया।'

दीवान के लिए यह परिस्थिति असाधारण न थी। उसने विनय की—'हुजूर, जाँच-पड़ताल में उलझनें पड़ती ही हैं। अब बिलम्ब न होगा। कोतवाल साहब अपराधियों को दण्डित करवावेंगे।' दीवान ने कोतवाल की ओर देखा।

कोतवाल ने कहा—'मुझको जैसी आज्ञा हो।'

व्यापारियों ने अपनी विनीत आँखें राजा की ओर फेरी। राजा ने कोतवाल को डाटा—'मूर्ख, मेरे पास तक इस ज़रा-से मामले के लाने की क्या ज़रूरत थी? जिसने अपराध किया हो, उसको पकड़ो और दण्ड दो।'

कोतवाल खीझ गया। मन मसोसकर बोला—'गरीबपरवर, इन सेठों ने मुझ से कभी नहीं कहा कि मुसाहिबजू के सिपाहियों ने यह वारदात की है, नहीं तो···' इसके आगे कुछ न कहकर कोतवाल खांस कर चुप हो गया।

राजा का क्रोध गरम हुआ। कहने लगे—'मुसाहिबजू यहाँ के राजा नहीं हैं। मैं राजा हूँ। कल बनियों पर डाका पड़ा, आज तुम्हारे-हमारे ऊपर डाला जावेगा। मुसाहिबजू को जागीर डाके डलवाने के लिए नहीं लगाई गई है। सेना राज्य के बैरियों के नाश के लिए मेरा निमक खाती है, राज्य के साहूकारों को मिटाने के लिए नहीं। यदि अब इस सेना के लिए डाके डालने के सिवा और कुछ काम नहीं रहा है, तो सबको बरखास्त करके क़ैद में डाल दो। सुनते-सुनते हैरान हो गया हूँ। हद हो गई। बाहर के लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? कितनी बदनामी होगी! देखते हो कि युग बहुत खराब है।'

युग का नाम लेते ही दीवान की आँखों के सामने ग्वालियर

के सिन्धिया और मालवा तथा बंगाल के अंगरेजों का चित्र घूम गया । वह तुरन्त बोला—'महाराज की आज्ञा तुरन्त अमल में लाई जावेगी ।'

राजा सोचने लगे । सोचते-सोचते कुछ पल बीत गए। क्रोध का स्थान दूरदर्शिता लेने लगी । फिर राजा ने उसी स्वर में कहा –'मुसाहिबजू को इसी क्षण मेरे सामने हाज़िर करो । मैं देखता हूँ ।'

साहूकार लोगों को ढाढ़स बँधा; परन्तु वे मुसाहिबजू के समक्ष न रहकर घर जाना चाहते थे । राजा भी नहीं चाहते थे कि वे लोग दरबार में और अधिक ठहरें । इसलिए संकेत पाते ही वे लोग न्याय की आशा में अपने-अपने घर चले गए । उनके चले जाने पर थोड़ी देर दरबार में स्तब्धता ने सब लोगों को जकड़-सा लिया । राजा सबसे पहले बोले—'मुसाहिबजू को क्या इस बात का पता न होगा ?'

दीवान ने उत्तर दिया—'न होगा, महाराज ! उनके कान में खबर पड़ गई होती, तो वे अपराधियों को कोतवाली भेज देते ।'

कोतवाल ने कहा—'अन्नदाता, मैं अभी जाकर उनसे बातचीत करता हूँ ।'

राजा ने कुछ सोचकर कहा—'नहीं, यह उचित न होगा । रामसिंह धंधेरे को बुलाकर कहलवाए देता हूँ । आज तो मुझको मिलने का अवकाश न होगा । कल बुलवाऊंगा ।'

कल के लिए मामले की जांच स्थगित करके राजा महलों में चले गए । दीवान चिन्ता में और कोतवाल चिन्तन में किले से बाहर हुए । दोनों अपनी-अपनी सेजगाड़ी में किले तक आए थे ।

सवार होने के पहले दीवान ने कहा—'मुसाहिबजू कल राजा के सामने आने के पहले हो यदि अपराधियों को पकड़ कर पेश कर दें, तो सारी समस्या हल हो जावेगी ।'

कोतवाल बोला—'धंधेरे को बुलवाया है । मैं ही उससे कह दूंगा ।'

'परन्तु',—दीवान ने कोतवाल को सावधान करते हुए कहा—'धंधेरे को राजा के सामने अनजान बनकर जाना चाहिए ।'

— १५ —

रामसिंह धँधेरेको बुलावा आनेके पहले ही मुसाहिबजू और उनके अन्य सरदारों-सिपाहियों की बात मालूम हो गई। रामसिंह बुलानेवाले की बाट देखने लगा। मुसाहिबजू ने बिना किसी घबराहटके लल्लो और रमूको बुलाया उनके आने पर मुसाहिबजूने हुक्का मँगवाया। लल्ली और रमूको बुलाए जानेका कारण भासित हो गया था। वे यथास्थान चुप खड़े रहे।

मुसाहिबजू ने हुक्का पीते-पीते कहा—'हम समझते थे कि हमारे आदमी हमारे लिए नाम कमायेंगे, परन्तु उन्होंने मुंह पर पोतने के लिये कालोंच तैयार की है।'

लल्ली चुप रहा। रमू ने हाथ जोड़ कर अज्ञता प्रकट की—'मर्जी'।'

मुसाहिबजू—'मैं समझता था कि मिहतर बड़े ईमानदार होते हैं; परन्तु, रमू कक्का, अब मेरा खयाल बदल गया है।'

रमू—'सो क्यों राजा ?'

मुसाहिबजू—'लल्ली से पूछो। यह कौन-सा जेवर कुञ्जी के पास गिरवी रखने गया था ?'

लल्ली—'महाराज, अपना।'

मुसाहिबजू—'गंगाजी की सौगन्ध खाकर कहेगा ?'

लल्ली—'चाहे जिसकी; अन्नदाता !'

मुसाहिबजू ने हुक्का हटाकर ताव के साथ पूछा—'मेरी सौगन्ध खाकर कहेगा ?'

लल्ली ने भी ताव के साथ उत्तर दिया-'कभी नहीं, चाहे सिर कट जाय।'

'पाजी कहीं का।' मुसाहिबजू ने तमककर कहा--'क्यों ऐसा किया? किसके कहने से किया? चिरूला के पास के दफीने की कहानी किसकी गढ़न्त है?'

रमू ने अपने स्थान पर ही पृथिवी पर सिर टेक कर मुसाहिबजू से प्रार्थना की—'राजा, यदि किसी को दण्ड दिया जाना है, मुझको मिलना चाहिए। मैंने, पूरन ने और मेरे सगे सम्बन्धियों ने वारदात की। लल्ली माते को मैं घसीट कर ले गया। इनकी इच्छा न थी। मुझको मारो, चाहो पालो, क़दमों में हूँ।'

मुसाहिबजू की आँखें लाल हो गईं और गला बैठ गया। बहुत धीमे स्वर में बोले—'राजा के सामने बुलाए जाने पर क्या कहोगे? जेवर का क्या हुआ?'

'हम लोगों ने बाँट खाया।' रमू ने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया-'हमारे पास उसका अब रञ्च-मात्र बाक़ी नहीं है।'

'और' लल्ली ने साहस के साथ कहा—'चाँदी का सारा जेवर मेरे बाँटमें पड़ा। मैं उनको कुल्ली के यहाँ गिरवी रखने गया और ज्योंही मालूम हुआ कि उसका माल है, उसके घर छोड़ आया।'

'सोने का कौन-कौन-सा गहना तुम लोगों के हाथ लगा था?'—मुसाहिबजू ने और भी अधिक धीमे स्वर में प्रश्न किया।

रमू ने हाथ जोड़कर तुरन्त उत्तर दिया—'राजा, हम लोगों ने उसी रात कुचल-पिचलकर जेवर गला दिया, इसलिए नहीं बतला सकते कि सोने के कौन-कौन-से गहने थे।'

उसी धीमे स्वर में मुसाहिबजू ने लल्ली से पूछा--'क्यों बे, तूने चांदी के जेवर क्यों नहीं गलाए ?'

लल्ली ने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया—'महाराज, उन गहनों की बनक बहुत अच्छी थी, इसलिए उनको नहीं तोड़ा-फोड़ा।'

मुसाहिबजू ने एक गहरी सांस ली। फिर हुक्का पीने लगे। इतने में रामसिंह धँधेरा आया। मुजरा करके निकट ही बैठ गया। मुसाहिबजू ने मुस्कराकर हुक्का धंधेरे के सामने बढ़ा दिया। रामसिंह ने जरा ओट लेकर हुक्का पीते-पीते कहा—'एक बिनती है।'

'कहो न।'—मुसाहिबजू ने शान्ति के साथ अनुरोध किया।

'आपको कुछ मालूम है ?'—रामसिंह ने कहा और रमू तथा लल्ली की ओर देखने लगा।

मुसाहिबजू बोले—'यही न कि बनियों पर इन लोगों ने डाका डाला है ?'

रामसिंह—'जी हां।'

मुसाहिबजू—'झूठ है।'

रामसिंह—'कुड्डी के यहां लल्ली जो जेवर गिरवी रखने गया था, वे पहचान लिए गए हैं।'

मुसाहिबजू—'उनको तो लल्ली अपना बतलाता है।'

रामसिंह—'जिस सुनार ने उन जेवरों को बनाया है, वह जीवित है और उसका निशान कुछ जेवरों पर है।'

मुसाहिबजू जरा चौंके। उनको यह बात मालूम न थी। यकायक लल्ली से बोले—'क्यों जी, जेवरों पर ये निशान कैसे ?'

लल्ली ने तुरन्त उत्तर दिया—'अन्नदाता, मैंने इसी सुनार से ये गहने बनवाए थे। यह सुनार केवल कुब्जी के ही गहने तो बनाता नहीं है।'

मुसाहिबजू के चेहरे पर कुछ सन्तोष की रेखा आई; रामसिंह ने व्यंग की मुस्कराहट के साथ कहा—'परन्तु वह सुनार यह नहीं कहेगा। वह तो यह कहेगा कि कुब्जी के लिए बनाए थे।'

लल्ली ढिठाई के साथ बोला—'उस सुनार से मेरी शत्रुता है'

मुसाहिबजू ने उतावलीके साथ कहा—'यह तो सम्भव है।'

रामसिंह उसी व्यंग के साथ बोला-'परन्तु जो बात सम्भव नहीं है, वह यह है कि लल्ली के घर में किसी प्रकार की कोई भी स्त्री नहीं है। माते ने पैंजने किसके लिये बनवाए?'

लल्ली ने सिर नीचा करके कहा—'ब्याह करूँगा, इसीलिए पैंजने ढलवाए थे।'

रामसिंह को हँसी आ गई। मुसाहिबजू क्षुब्ध स्वर में बोले—'चुप बेहया।' वे रामसिंह से कुछ कहना चाहते थे, पर रामसिंहने उनके सामने हुक्का कर दिया। वे चुपचाप पीने लगे। रामसिंह की समझ में सम्पूर्ण परिस्थिति आ गई। रामसिंह ने दक्षता के साथ कहा—'महाराज के पास आज साहूकार लोग गए थे। दीवान और कोतवाल को भी ले गए थे। सबकी सुनकर उन्हों ने आपको बुला कर पूछने और अपराधियों को दण्ड देनेका निश्चय किया है। वे हलकारों को सीधा आपके पास नहीं भेजेंगे। पहले मुझको बुलाया है। मुझको हुक्म होगा कि मैं आपको लिवा ले चलूं।'

मुसाहिबजू एक निश्चय पर पहुँच चुके थे। बोले—'कुँवर

साहब, तुम महाराज के पास हो आओ। जो-कुछ कहें, बतलाना। मैं कल उन के दर्शन करूँगा।'

रामसिंह ने विनयपूर्वक कहा—'आप वहां क्या कहेंगे, मुझको कुछ बतला दिया जावे, तो उसी ढाल पर मैं भी चर्चा चला दूँगा।'

मुसाहिबजू ने निश्शंक होकर कहा—'मेरे आदमियोंने डाका नहीं डाला। वे निर्दोष हैं। जिन्होंने डाला हो, उनको ढूँढ़ा-खोजा जावे और दण्ड दिया जावे। नाहक हमको और हमारे सिपाहियों को बदनाम किया जा रहा है।'

राजा से जो वार्त्तालाप करना था, उसकी प्रणाली रामसिंह ने मनमें बना ली।

— १६ —

रामसिंह तुरन्त राजा के पास पहुँचा। राजा ने उससे अकेले में बातचीत की।

राजा—'मुसाहिबजू को कल तक का समय देता हूं। वे कल सारे अपराधियों को कोतवाली में उपस्थित कर दें।'

रामसिंह—'जिस किसी को भी दण्ड देना हो, अन्नदाता, स्वयं अपने हाथ से दें, यही विनती है।'

राजा—'अच्छा, तो मेरे सामने पेश कर दें।'

रामसिंह—'कल मुसाहिबजू को क़िले में बुलाने की मर्ज़ी हुई है?'

राजा—'हाँ, कल दोपहर बाद भेज दो।'

रामसिंह—'महाराज, यह क्या निस्सन्देह है कि मुसाहिबजू के सिपाहियों ने ही यह कर्म किया है?'

राजा—'चाँदी के गहने कुञ्जी ने पहचान लिए हैं।'

रामसिंह—'ठीक मर्ज़ी हुई; परन्तु अन्नदाता, लल्ली कहता है कि वे जेवर उसीके हैं।'

राजा—'जिस सुनार ने बनाए हैं, वह सौगन्ध खाता है कि उसने कुञ्जी के लिए बनाए थे।'

रामसिंह—'हुजूर, उसका लल्ली से बैर है।'

राजा—'फिर लल्ली कुञ्जी के यहाँ जेवर छोड़कर क्यों भाग आया? वह बिन्तवार क्यों नहीं हुआ?'

रामसिंह—'वह डर गया होगा, महाराज!'

राजा—'कुंवर साहब, लल्ली सिपाही कुञ्जी बनिए से डर गया !'

रामसिंह—'महाराज, बनियों की हथौड़ी ऊपर से सीधी तथा भयभीत होती है और भीतर से वक्र तथा निर्भीक।'

राजा—'और मुसाहिबजू के सैनिकों की बनक ऊपर से वक्र और निर्भीक तथा भीतर से सीधी और भयभीत, क्यों कुंवर साहब ?'

रामसिंह—'अन्नदाता की मर्ज़ी ठीक हुई। मैं कैसे मुंह लग सकता हूँ, चरणों का सेवक हूँ।'

राजा—'रामसिंह, किसी युग में राजा अपने भाई का भी ऐसा बर्ताव सहन नहीं करता होगा और अब तो सब ओर निगाह रखनी पड़ती है। हमारे जितने मित्र नहीं, उतने शत्रु हैं। अङ्गरेज़ों के जनरल के कानों में विष भरने के लिए ग्वालियर, समथर इत्यादि मानो प्रण किए बैठे हैं।

रामसिंह—'महाराज, चाहे जिसको चाहे जैसा दण्ड दें; परन्तु अर्ज़ यह है कि सेना तितर-बितर न होने पावे। मैं तो छोटी बुद्धि का आदमी हूं। हुजूर सब तरफ को देख सकते हैं। मुझको अङ्गरेज़ों से इतनी शंका नहीं है, जितनी मराठों से। मराठे हमारी भूमि के गाहक हैं; किन्तु अङ्गरेज़ केवल शान्ति चाहते हैं।'

राजा—'अङ्गरेज़ वास्तव में क्या चाहते हैं, यह तो आगे चलकर ठीक-ठीक मालूम होगा; परन्तु इसमें बहुत-कुछ सत्य है कि मराठे हमारे पुश्तैनी दुश्मन हैं।'

थोड़ी देर तक राजा और रामसिंह दोनों चुप रहे। राजाने

रुखाई के साथ कहा—'रामसिंह, इतना बड़ा अधर्म सहज ही नहीं पचाया जा सकता, चाहे जो-कुछ हो।'

रामसिंह गुञ्जाइश समझकर बोला—'हुजूर, पहले ज़माने से सुनते आए हैं—ब्राह्मण अपराधी को कुछ दण्ड, क्षत्रिय को कुछ और, वैश्य को और ही दूसरे प्रकार का और शूद्र को अत्यन्त कठोर।'

राजा ज़रा हँसे, फिर कठोर धीमे स्वर में बोले—'कुँवर साहब, वह ज़माना मुसलमानों के पहले था। पठानों और मुग़लों के ज़माने में वे अन्तर बहुत कुछ टूट गए।'

रामसिंह ने उस हंसी में आशा की झलक और कठोर धीमे स्वर में दृढ़ता की कमी का आभास पाकर ज़रा हठपूर्वक कहा—'अन्नदाता, अनेक बड़े अन्तर फिर भी बने रहे। राजवंश का अपराधी उस दण्ड का भागी नहीं हुआ, जो साधारण जनता के दोषियों को समान अपराध के लिए दिया जाता था।'

राजा के मन में कुढ़न हुई। कुछ देर चुप रह कर बोले—'तुम्हीं लोग सब बातों का निर्णय कर लिया करो। राजा की क्या ज़रूरत?'

रामसिंह राजा के स्वभाव से परिचित था। वह सिर झुका कर चुप हो गया। राजा ने दृढ़ता पूर्वक कहा—'कल दोपहर बाद मुसाहिबजू को भेजो। वैसे कोतवाल के द्वारा बुलवाता; पर उनके पद-गौरव की रक्षा की इच्छा से तुम्हारे द्वारा बुलवाता हूँ।'

रामसिंह प्रणाम करके चला गया।

— १७ —

राजा के पास से लौट कर रामसिंह ने मुसाहिबजू को समाचार सुनाया। मुसाहिबजू की छावनी में बात फैल गई। रमू बिना बुलाए हाज़िर हुआ। मुजरा करके बोला—'अन्नदाता, क़िले क्यों जावें? असली अपराधियों को लेकर मैं राजा के क़दमों में पहुंचता हूँ। फिर उनको जो अच्छा लगे, करें।'

'किन किन को लेकर जाओगे?'—मुसाहिबजू ने बिना उत्सुकता प्रकट किए प्रश्न किया।

रमू ने कई बुड्ढे मिहतरों के नाम गिनाए– अपना नाम सबसे पहले लिया। लल्ली को छोड़ दिया। मुसाहिबजू ने पूछा— 'लल्ली को क्यों छोड़ दिया?'

रमू ने उत्तर दिया—'माते हम लोगों के साथ में न थे।'

'और पूरन?'—रामसिंह ने सुझाते हुए पूछा।

मुसाहिबजू ने रमू की ओर से जवाब दिया—'पूरन नहीं था। पूरन उस दिन सारे समय मेरे पास था।'

रमू की आँख डबडबा आई। बोला—'मालिक, डाके में क्या दण्ड दिया जाता है?'

मुसाहिबजू उत्तर न दे पाए। रामसिंह ने तुरत कहा—'सूली, सिर काटना, देश-निकाला और सब जायदाद ज़ब्त।'

रमू मुस्कराकर बोला—'जायदाद तो हम लोगों की हमारे मालिक हैं, सो उसका कोई डर नहीं। देश-निकाला हम लोग ओढ़ नहीं सकते, क्योंकि दतिया के बाहर हमारा कोई सहारा नहीं, इसलिए पहले दण्ड के लिए हम सब तैयार हो जावें।' रमू

जाने के लिए उद्यत हुआ।

'रमू,' मुसाहिबजू ने बारीक स्वर में कहा—'बिना मेरे हुकुम के क़िले-बिले में कहीं मत जाना।'

रमू ने 'बहुत अच्छा' कहा, एक लम्बी सांस ली और बाहर चला गया।

रामसिंह ने कहा—'डाका तो रमू ने ही क़बूल कर लिया। अब क्या होगा?'

मुसाहिबजू ने उत्तर दिया—'मैं राजा के पास जाऊँगा। जो कुछ दण्ड उनको देना हो, मुझको दें।'

रामसिंह ने विनय की—'जो-कुछ आप करें, समझ-बूझकर करें। बड़ा नाम है, बड़ा काम है। उतावली में आकर कुछ कर न बैठिएगा।'

'हूँ'—कहकर मुसाहिबजू चुप हो गए। संकेत पाकर रामसिंह चला गया। खबर भेजकर मुसाहिबजू चरखारीवाली सरकार के पास गए। उनको परिस्थिति का आकार-प्रकार बहुत-कुछ मालूम हो चुका था। पान खाने के बाद मुसाहिबजू ने कहा—'कल क़िले का बुलावा है।'

चरखारीवाली बोलीं—'मैंने भी सुना है।'

मुसाहिबजू—'मिहतर नहीं मारे जा सकेंगे।'

चरखारीवाली—'जब आप सरीखे स्वामी रक्षा करने को सन्नद्ध हैं, तो कैसे मारे जायँगे?'

मुसाहिबजू—'राजा ने हठ पकड़ा है। किसी ने उनके कान भरे हैं।'

चरखारीवाली 'कोतवाल तो अपने ही आदमी हैं। उनकी

नातेदारी चरखारी में है। लाला कृष्णराम अमीन उनके फूफा होते हैं।'

मुसाहिबजू—'यहाँ भी दीवान, अमीन, कोतवाल सब अपने हैं; परन्तु राजा के ढीमर को साहूकारों ने मिला लिया है। वह राजा के कान भरा करता है।'

चरखारीवाली—'रामसिंह द्वारा उस ढीमर को आप ठीक करवाते। क्या अब कुछ नहीं हो सकता है?'

मुसाहिबजू—'कुँवर रामसिंह का मन कुछ फटा हुआ-सा है। मैं हल्की बात कहने की इच्छा नहीं कर सका।'

चरखालीवाली—'सुनते हैं, एक नाई भी महाराज के बहुत कान लगा है। उसकी मार्फ़त कुछ हो सकता हो।'

मुसाहिबजू—'यदि न हो सका, तो क़दर और जावेगी नाई से बढ़कर राजा उस ढीमर को मानते हैं।'

चरखारीवाली—'अपने आदमियों को बचाने के लिए कोई कसर नहीं रखनी चाहिए।'

मुसाहिबजू—'आप कुछ कर सकती हैं?'

चरखारीवाली - 'क्या?'

मुसाहिबजू - 'आप रानी साहिबा से कुछ विनती करें।'

चरखारीवाली--'वे उस दिन मुझको लिवा ले जाने के लिए यहां आई थीं। मैं न जा सकी, इसलिए बुरा मान गई हैं। मैं नहीं जाऊँगी।'

मुसाहिबजू -'तब जो मैंने निश्चय किया है, वह करूँगा।'

चरखारीवाली- 'क्या?'

मुसाहिबजू--'मैं स्वयं जाकर सब अपराध अपने सिर ले

लूँगा; क्यों कि वास्तव में मेरे सिपाही निर्दोष हैं।'

चरखारीवाली--'मैं रानी के पास चली जाती, परन्तु वे कुछ न करेंगी और न कर सकेंगी। उनकी नहीं चलेगी। मेरा मान घटेगा।'

मुसाहिबजू दो क्षण चुप रहे, हिम्मत बाँधकर बोले—'अब तो जो-कुछ होना है, वह होगा ही। माफी हो, तो एक बात पूछूँ ?'

चरखारीवाली ने मुस्कराकर दृढ़तापूर्वक कहा—'पूछिए।'

मुसाहिबजू ने पूछा –'यह डाका आपने डलवाया था ?'

चरखारीवाली सरकार के होंठों पर से मुस्कराहट चली गई। आँखों में तेज भर गया। उत्तर दिया—'मैं डाका डलवाती !'

मुसाहिबजू की सहसा प्रवृत्ति जाग्रत हो चुकी थी। बोले—'अपने-आप इतना बड़ा काम ये मिहतर कैसे कर सकते थे ? और फिर गहना-पत्रा सब उन लोगों ने यहाँ भिजवा दिया था। कुछ भी अपने लिए नहीं रखा। क्या मालिक के हुकुम के बिना ये लोग डाका डाल सकते थे ?'

चरखारीवाली—'ठीक यही प्रश्न राजा आपसे करेंगे।'

मुसाहिबजू—'तब क्या उत्तर दूँगा ?'

चरखारीवाली—'यही कि डाका आपकी पत्नी ने डलवाया है।'

मुसाहिबजू—'राजा को जो-कुछ उत्तर दूँगा, कल सुन लीजिएगा।'

चरखारीवाली—'मैं अभी सुनना चाहती हूँ।'

मुसाहिबजू—'अपने स्वभाव के कारण मैं दरिद्र हो गया हूँ। सेना के पालन में चरखारी का सब गहना बेच खाया।

इसलिए कमी को पूरा करने की ग़रज़ से मिहतरों द्वारा बटमारी करवाई ।'

चरखारीवाली—'और गहने का क्या किया ?'

मुसाहिबजू—'अपने घर केरुआ भेज दिया ।'

चरखारीवाली—'मैं अभी राजा के पास समाचार भेजती हूँ कि गहना मेरे पास है और डाका मैंने डलवाया था ।'

क्रोध के मारे मुसाहिबजू की छाती जलने लगी; परन्तु उन्होंने कहा—'आपको मेरे सिरकी सौगन्ध है, जो आप ऐसा कुछ भी करें । यदि आपने मेरी सौगन्ध का उल्लंघन किया, तो बन्दूक़ मारकर मर जाऊँगा ।'

कुछ ठण्डक के साथ चरखारीवाली सरकार बोलीं—'और यदि आपने इस बोझ को अपने सिर लिया और आपको कुछ हो गया, तो भरी हुई पिस्तौल मेरे पास भी है ।'

मुसाहिबजू अपनी ड्योढ़ी में चले आए ।

— १८ —

दूसरे दिन तामझाम में बैठकर मुसाहिबजू नियत समय पर क़िलेमें पहुँचे। उस दिन वे अपनी सबसे अधिक तड़क-भड़कदार पोशाक पहनकर गए थे। मुजरा करके राजा के सामने हाथ बाँधकर खड़े हो गए। दीवान और कोतवाल बैठे हुए थे। उन लोगों ने ओट लेकर मुसाहिबजू का अभिवादन किया। राजा ने मुसाहिबजू को यथास्थान बिठला लिया। राजा के लिए हुक्का आ गया। वे गुड़गुड़ाने लगे। सब लोग नीचे सिर किए चुपचाप बैठे रहे।

सबसे पहले दीवान बोला—'अन्नदाता, अबकी बार वर्षा बहुत खिंच गई है। ढोरों और आदमियों को बड़ा कष्ट हो रहा है।'

राजा ने कहा—'बहुत देर तो कुछ हुई नहीं है। आसाढ़ का उतरना आरम्भ हुआ है।'

कोतवाल—'चारे की कमी हो गई है।'

राजा—'लू बहुत चल रही है। पानी अच्छा बरसेगा।'

दीवान—'कुओं में पानी काफ़ी नीचे उतर गया है।'

कोतवाल—'ब्याह-बरातें बहुत हो रही हैं। पानी और चारे की त्राहि-त्राहि मची हुई है।'

राजा—'अभी तो कुछ लगनें और हैं।'

दीवान—'इस वर्ष तो महाराज, ब्याह फूट-से पड़े हैं।'

राजा—'सो तो हर साल ही ऐसा होता है। ब्याह-शादी, मरग-मौत सब साथ लगे हुए हैं।'

इसके बाद फिर स्तब्धता छा गई। राजा ने हुक्का पीते-पीते मुसाहिबजू से कहा—'मुसाहिबजू!'

मुसाहिबजू हाथ जोड़कर बोले—'मर्जी।'

राजा—'रामसिंह ने कोई संवाद दिया था?'

मुसाहिबजू—'हां, अन्नदाता!'

राजा—'वे लोग कहां हैं?'

मुसाहिबजू—'वे महाराज चाकरी पर हैं।'

राजा—'दतिया में?'

मुसाहिबजू—'हां, गरीबपरवर!'

राजा—'यहां क्यों नहीं ले आए?'

मुसाहिबजू—'जैसी मर्जी हो।'

राजा—'मैंने यहाँ आने के लिए आदेश दिया था।'

मुसाहिबजू—'जो हुकुम। वे लोग हर जगह हुजूर का ही तो निमक खाते हैं।'

राजा—'मैं पूछता हूँ, उनको यहाँ क्यो नहीं ले आए?'

मुसाहिबजू—'मैंने, महाराज, विनती तो की है।'

राजा—'इन लोगों ने डाका डाला?'

मुसाहिबजू—'नहीं तो महाराज!'

राजा—'लल्ली आपकी सेना में नौकर है?'

मुसाहिबजू—'वह महाराज का ही निमक खाता है।'

राजा—'अरु कर करनी कर करै लड़ाई! डाके का जेवर कुल्ली सेठ के यहाँ गिरवी रखने गया था?'

मुसाहिबजू—'महाराज, वह अपना जेवर गिरवी रखने गया था।'

राजा—'फिर छोड़ कर क्यों भाग आया?'

मुसाहिबजू—'क्यों कि, हुजूर, उसमें मिहतरों-जैसी हिम्मत नहीं है।'

राजा—'डाका मिहतरों ने ही डाला है। आपकी सोने की पहुँचियाँ कुञ्जी के यहां गिरवी रखी गई थीं ?'

मुसाहिबजू ने उत्तर नहीं दिया। राजा ने प्रश्न को दुहराया। मुसाहिबजू चुप रहे। राजा का क्षोभ बढ़ने लगा। राजा ने पूछा - 'वे पहुँचियाँ आपके घर में फिर पहुँच गई हैं ? कैसे पहुँचीं ?'

मुसाहिबजू ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया—'केरुआ में एक जोड़ पहुँचियाँ ही नहीं हैं, अनेक जोड़ हैं।'

राजा—'केरुआ का हाल मुझको भी मालूम है। परन्तु ये पहुँचियाँ चरखारी की थीं।'

मुसाहिबजू—'चरखारी में केरुआ की भी अपेक्षा अधिक पहुंचियाँ हैं।'

राजा—'मैं नहीं चाहता कि मेरे द्वारा आपका अपमान हो। मिहतरों और लल्ली को आज एक घण्टे के भीतर क़िले के फाटक पर हाज़िर करिये। यदि आपने ऐसा न किया तो आपको कठोर दण्ड दिया जावेगा।'

मुसाहिबजू—'अन्नदाता का निमक मेरे कण-कण में है। जो दण्ड देना हो, उसको भुगतने में नाहीं नहीं करूँगा।'

राजा—'परन्तु उन बदमाशों को यहाँ आप पेश नहीं करेंगे?'

मुसाहिबजू ने सिर नीचा किए हुये हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'महाराज, वे सिपाही हैं, बदमाश नहीं हैं।'

'चुप रहिए'—राजाने तमककर कहा। दरबार में सन्नाटा

छा गया। राजा क्रोध के मारे काँपने लगे। फिर हुक्के की निगाली मुंह में देकर कुछ सोचने लगे। कुछ क्षण उपरान्त बोले—'कोतवाल !'

कोतवाल—'मर्ज़ी, हुज़ूर !'

राजा—'यदि एक घण्टे के भीतर मुसाहिबजूके मिहतर और लल्ली लोधी क़िले के फाटक पर हाज़िर न हो जायँ, तो तुम उनको पकड़ कर लाओ। चाहे कुछ हो।'

संकेत पाकर सब लोग दरबार से चल दिये। मुसाहिबजू तामझाम में बैठ कर घर आए। घर पहुँचने के पहले ही उनकी छावनीमें राजा की आज्ञा का समाचार आगया था। सारे सिपाही घबराहट और चिन्ता में मुसाहिबजू की बाट देख रहे थे। उन्होंने आते ही सिपाहियों को आज्ञा दी—'सब लोग पकड़े न जाने के लिए तैयार रहो। गोली-बारूद हमारे पास काफ़ी है।'

— १९ —

कोतवाल ने घर पहुंचकर अपने सिपाहियों को इकट्ठा किया। गोली-बारूद से बन्दूकें सजा लीं। इतने में दो घंटे से भी अधिक समय हो गया। मुसाहिबजू का कोई भी आदमी क़िले के फाटक पर या कोतवाली में हाज़िर नहीं हुआ। कोतवाल हिम्मतवाला था और काफ़ी चतुर। उसने रामसिंहको बुलवाया। कोतवाली का जो सिपाही बुलाने गया था, कहता आया कि उन्होंने घर के भीतर से ही जवाब दे दिया कि कह देना, कहीं बाहर गए हुए हैं।

इतने में राजा का हलकारा कोतवाली आया। उसने कोतवाल को राजा की आज्ञा सुनाई—'केरुआवालों ने अपराधियों को अभी तक पेश नहीं किया है। यदि अपराधी पेश नहीं किए जावें, अथवा पकड़ने में न आवें, तो मुसाहिब दलीपसिंह को क़ैद करके किले ले आओ और बन्दीगृह में बन्द कर दो। अन्यथा आज ही उनको देश-निकाला दे दो।'

कोतवाल इस तरह की आज्ञा के जारी होने की पहले ही कल्पना कर चुका था। उसने हलकारे को उत्तर दिया—'क़दमों में विनती ज़ाहिर करना कि आज्ञा के अक्षर-अक्षर का पालन किया जावेगा।'

हलकारे के चले जाने के उपरान्त कोतवाल कपड़े पहनकर मुसाहिबजू के निवासस्थान—भरतगढ़ फाटक—पर अकेला गया। उसने साथ में कोई हथियार भी नहीं लिया। वहां मुसाहिबजू के सारे सिपाही हथियार बाँधे लड़ाई के लिए तैयार थे। ड्योढ़ी पर

स्त्रियाँ भी बन्दूकें लिए सावधान थीं।

कोतवाल सिपाहियों के बीच में धस गया। बोला—'मुसाहिबजू की सेवा में मुजरा जाहिर करो। मुझको मिलना है। अच्छा समाचार है।'

सिपाहियों ने कहा—'हमको बतलाइए।'

कोतवाल ने उत्तर दिया—'तुम्हारे बतलाने की बात नहीं है। मैं तुम सबों के बीच में ही तो उनसे मिलूंगा। कोई हथियार भी साथ नहीं लिए हूं। चाहो तो मुझको एक वार में समाप्त कर देना। समय नहीं है। बहुत जरूरी समाचार है। मुसाहिबजू को शीघ्र खबर दो।'

मुसाहिबजू के पास खबर पहुंच गई। उन्होंने कोतवाल को बुलवा लिया। पान-इलायची के उपरांत मुसाहिबजू ने आने का कारण पूछा—जैसे कोई बात ही न हो। बैठक में कुछ हथियार-बन्द सिपाही आगए।

कोतवाल ने उत्तर दिया—'क्या यह घर मेरा नहीं है?'

मुसाहिबजू ने हंसकर कहा—'अवश्य है। तब तो आए। समाचार सुनाइए।'

कोतवाल ने सिपाहियों की ओर दृष्टिपात करके कहा—'क्या कोई जल्दी है?'

'नहीं', मुसाहिबजू बोले—'ऐसी कोई जल्दी नहीं है। अकेले ही आए हो? हुक्केवाला भी साथ नहीं लाए?'

'अकेले में प्रार्थना करूँगा'—कोतवाल ने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा।

मुसाहिबजू ने सिपाहियों को बैठक से बाहर कर दिया और

चर्चा के लिए कोतवाल का मुंह ताकने लगे।

कोतवाल ने कहा—'महाराज बहुत नाराज़ हैं। आपने सेना को किसलिए तैयार किया है? महाराज सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? आपको शायद क्षमा भी कर दें; परन्तु मुझको तोप से उड़वा देंगे। आपने यह नहीं सोचा कि इसका फल क्या होगा?'

मुसाहिबजू—'तो क्या मैं अपने आदमियों को यों ही मरवा देता? वैसे वे कुत्ते की मौत मारे जाते, अब सिपाहियों की गति पावेंगे। ड्योढ़ी पर स्त्रियों को भी तैयार देखा होगा?'

कोतवाल—'राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिए था। हम सबने उनका निमक खाया है।'

मुसाहिबजू—'राजा कहें कि अपने थाने के सब सिपाहियों को विष दे दो, तो दे दोगे?'

कोतवाल सोचने लगा। सोचकर बोला—'आपके लिए और कोई उपाय रहा भी नहीं था। परन्तु सवाल है, राजा को कैसे समझाया जावे?'

मुसाहिबजू के मन में जो बात कुछ क्षण पहिले उठी थी, उन्होंने कही—'राजा ने कोई नवीन आज्ञा निकाली है?'

कोतवाल ने कहा—'हाँ।'

मुसाहिबजू ने बिना किसी संयम के तुरन्त पूछा—'वह क्या? क्या आज्ञा निकली है?'

'उसीको प्रकट करने अकेला आया हूँ।' कोतवाल ने मुसाहिबजू की आँख में आँख गड़ाकर उत्तर दिया—'मर्ज़ी हुई है कि मिहतरों को और लल्ली को पकड़ कर क़िले के बन्दीगृह में बन्द करदो और आपको पकड़कर दरबार में पेश करो।'

मुसाहिबजू ने भी निगाह मिलाए हुए ही कहा—'और यदि ऐसा न हो सके, तो ?'

कोतवाल बोला—'इसके आगे उन्होंने और कुछ मर्ज़ी तो नहीं की है; परन्तु इसके आगे जो-कुछ होना चाहिए वह मैं समझ गया हूं।'

मुसाहिबजू—'वह क्या ?'

कोतवाल—'वह यह कि अपने ऊपर हथियार चलाकर मै आत्मघात करलूँ।'

मुसाहिबजू ने दृढ़तापूर्वक कहा—'जो-कुछ भी हो। राजा की आज्ञा का पालन मेरे जीते जी नहीं हो सकता।'

कोतवाल ठंडक के साथ बोला—'परन्तु आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि राजा को अपने हठ के सामने फिर किसी बात का लिहाज़ नहीं रहता।' मुसाहिबजू उपयुक्त उत्तर सोचने लगे। कोतवाल कहता गया—'आपके सिपाहियों के हथियार राजा पर आई हुई किसी विपद को काटने के लिए उठने चाहिए थे, सो आपस वालों का ख़ून बहाने के लिए उठने को हैं। ऐसी लड़ाई से दतिया का राज्य नष्ट हो जावे, सो होगा नहीं। आपके अनेक सिपाही मारे जावेंगे और राजा के भी अनेक सिपाही और सरदार। आपकी जागीर भी समाप्त हो जावेगी। आगे आने वाला युग हम सबको नाम धरेगा। मुझको कहेंगे कि या तो मैंने राजद्रोह किया या मित्रद्रोह, और आपके लिये जो कुछ कहा जावेगा उसको तो मुँह से कहते नहीं बनता।'

मुसाहिबजू ने अनुरोध किया—'क़सम है, बतलाइए मुझको क्या कहा जावेगा ?'

कोतवाल ने विनय के स्वर में कहा—'पहिले क्षमा कर दिया जाऊँ, तो कह दूँगा।'

मुसाहिबजू बोले—'मैं क़सम धराकर पूछ रहा हूँ बेखटके कहो।'

कोतवाल ने ठंडक और दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'लोग कहेंगे कि मुसाहिबजू निमकहराम थे।'

मुसाहिबजू सन्नाटे में आगए। क्रोध के आवेग में काँप गए। एक बार पास में रखी हुई अपनी दुनाली की ओर आँख गई, फिर शान्त स्वर में बोले—'केरुआ के पंवारों ने कभी स्वामिघात नहीं किया।'

कोतवाल ने परिस्थति को तुरन्त ताड़ कर कहा—'मैं पहिले ही माफ़ी माँग चुका था। एक विनती है। करूँ ?'

मुसाहिबजू ने बरबस मुस्कराकर उत्तर दिया—'अब और क्या कहने को बाक़ी रहा ? कह डालो।'

'नहीं, ऐसी मर्ज़ी न हो।' कोतवाल उसी ठंडक के साथ बोला—'इस लड़ाई में अपने आदमियों को कटवा कर यदि आप बचगए, तो केरुआ ही तो जावेंगे, चरखारी तो जावेंगे नहीं ?'

मुसाहिबजू ने कहा—'प्रतीत ती ऐसा ही होता है।'

कोतवाल ने तुरन्त प्रस्ताव किया—'तो आप सब आदमियों को और सामान को लेकर केरुआ क्यों नहीं चले जाते ? कुछ समय उपरान्त राजा शान्त हो जावेंगे। आपके लिए उनका मन बदल जावेगा और आपको फिर सम्मान-सहित बुला भेजेंगे। जागीर भी बच जावेगी।'

मुसाहिबजू सोच बिचार में डूबने उतराने लगे। काफ़ी

समय तक सोचते रहे। कोतवाल ने फिर कहा—'मैं आपका स्नेहपात्र हूं और राजा का नौकर। आपके आदमी हथियारबन्द हैं। दतिया में या दतिया के बाहर भी कोई आपके प्रति उँगली नहीं उठा सकता। आप मुझसे इस सम्बन्ध में चाहे जैसी सौगन्ध ले लें।'

मुसाहिबजू ने कोतवाल के प्रस्ताव को स्वीकृत किया; परन्तु क़सम के लिए गंगाजली मँगवाई।

कोतवाल ने सहज ही गंगाजली न उठाने का निश्चय कर लिया था। बोला—'मेरा आपको विश्वास नहीं है ? मान लिजिए आप अपने पूर्व निर्धार पर अमल करें, तो दोनों ओर से गोली चलेगी, लोहे से लोहा भिड़ेगा और खून बह उठेगा। यदि आप मेरी सम्मति के अनुसार काम करें और यहाँ से कूच करते ही लड़ाई हो पड़े तो भी फल एकसा ही होगा।'

मुसाहिबजू ने मुस्कराकर कहा—'तब आपकी बात में चाल है और दग़ा है। भरतगढ़ में बैठकर कुछ देर रक्षा तो अपनी करलेंगे।'

कोतवाल तुरन्त बोला—'तोप का मुकाबिला भी भरतगढ़ करलेगा ?'

इतने में गंगाजली आगई।

कोतवाल ने कहा—'मैं गंगाजली की सौगन्ध खाकर भी कहूंगा। आप मेरा विश्वास करें। आप सब कमठाने को लेकर केरुआ चले जायँ।'

कोतवाल ने गंगाजली हाथ में लेकर मुसाहिबजू को बेखटके मार्ग मिलने के सम्बन्ध में सौगन्ध खाई।

मुसाहिबजू ने मान लिया। कोतवाल ने बड़ी अनुनय के साथ कहा—'आप मुझको आपना मित्र कहने की कृपा करते हैं और आजतक मैंने आपसे कोई याचना नहीं की। आज एक चीज़ माँगता हूँ। क्या आप देंगे ?'

मुसाहिबजू का गला भर आया। बोले—'माँगो, दूँगा।'

कोतवाल ने तुरन्त प्रार्थना की—'स्मारक के तौर पर अपनी दुनाली बन्दूक़ दे दीजिये।'

मुसाहिबजू ने बन्दूक़ दे दी। कोतवाल बन्दूक़ लेकर चला गया।

— २० —

उसदिन जो कुछ हुआ, उसको लेकर दतिया नगर भर में कोलाहल मच गया। पहले तो यह समाचार ज़ोरके साथ फैला कि राजा की आज्ञा की अवज्ञा करने के कारण भरतगढ़ पर गोला चलने वाला है और जवाब में भी ऐसी गोलाबारी होगी कि दतिया का एक घर भी समूचा न बचेगा। लोगों ने भागने की तैयारी की। कुछ तो आस-पास के ग्रामों में भाग भी गए। लुटे हुये साहूकारों के साथ बहुत थोड़े लोगों की सहानुभूति रह गई। अधिकांश लोग कह रहे थे 'कितना धन लुटा होगा, लूटमार तो होती ही रहती है; पर इस तरह घड़ी-भर में हरा—भरा नगर नहीं उजाड़ा जाता।'

कोतवाल दुनाली बन्दूक़ लेकर सीधा राजा के पास पहुँचा। इधर मुसाहिबजू ने तुरन्त केरुआ के लिए कूच करने की योजना बनाली। लड़ाई-भिड़ाई के उपरान्त बचेखुचे अनाहत लोग यों भी कहीं बाहर शरण लेते—मुसाहिबजू ने भी समग्र सामान समेत केरुआ जानेकी तैयारी कर रखी थी। अब बिना युद्ध और ख़ून-ख़राबी के प्रयाण हो सकेगा, इस लिए सन्ध्या होने के पूर्व ही काफ़ी मार्ग तै कर लेने की सबके मन में समाई हुई थी। चरखारीवाली सरकार की पीनस तैयार हुई। उनकी निजी सेविकाएं रथों में बैठ गईं। घुड़सवार घोड़ों पर और प्यादे पैदल भरतगढ़ छोड़कर चल पड़े। मार्ग क़िले के नीचे नीचे होकर था।

राजा ऊँची बुर्ज पर एक छाया में मसनद पर बैठे हुए थे। राजा ने कोतवाल को वहीं बुला लिया। कोतवाल ने राजा के

पैरों के पास बन्दूक रखकर निवेदन किया—'आज्ञा का पालन हो गया, महाराज !'

राजाने प्रसन्न होकर पूछा 'किस तरह ?,

कोतवाल ने उत्तर दिया—'अन्नदाता ! मुसाहिबजू सरदर हैं और सेवकवत्सल। उनके मिहतरों ने वारदात ज़रूर की; परन्तु माल उनके पास नहीं रहा। मुसाहिबजू के पास भी वह माल नहीं आया। परन्तु अपने सिपाहियों का अपराध स्वीकार न करके उन्होंने मर-मिटने की ठान ली और वह अपने सैनिकों-सहित बन्दूकें भरकर लड़ने के लिये डट गए। मैं अकेला उनके पास गया। उनको समझाया-बुझाया, तो मान गये। मैंने उनको हुजूर की आज्ञा देश-निकाले के विषय में सुनादी. क्योंकि पकड़-धकड़ में अपने ही सिपाहियों की प्राण हानि थी। अन्नदाता की आज्ञा पालन के प्रमाण में मुसाहिबजू ने अपनी बन्दूक़ क़दमों में भेजी है, सो मैं पेश करता हूं।'

राजा को प्रसन्नता कम नहीं हुई। बोले—'मेरी भी इच्छा थी कि ख़ून-ख़राबी न हो। मुसाहिबजू वैसे अच्छे सिपाही हैं और स्वामिधर्मी हैं; परन्तु उनके सिपाहियों ने अच्छा नहीं किया, इस लिये दण्ड देना पड़ा। तुमने बहुत चतुरता के साथ काम किया। मैं खुश हूं।'

कोतवाल ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—'अन्नदाता, यह बन्दूक़ मालख़ाने में जमा करदी जावे ?'

राजा ने हँसकर कहा—'नहीं। तुमको इनाम में देता हूं। अपने पास रखो।'

कोतवाल ने राजा के पैर छुए, और अपने पास बन्दूक

रख कर बैठ गया। राजा का खवास, जो जाति का ढीमर था, पान ले आया। राजा पान खाकर तकिया से टिक गए। देर तक टिके रहे। सन्ध्या होने में अभी विलम्ब था।

एक ओर से कुछ हल्ला गुल्ला सुनाई पड़ा धूल भी उड़ रही थी। राजाका ध्यान आकृष्ट हुआ। कोतवालसे पूछा 'यह क्या है?'

कोतवाल ने उत्तर दिया—'अन्नदाता, मुसाहिबजू अपने आदमियों के साथ प्रस्थान कर रहे हैं। केरुआ के लिये मार्ग यहीं होकर है।'

राजा चुपचाप देखते रहे। थोड़ी देर में आगे-आगे घोड़े पर सवार मुसाहिबजू, उनके पीछे पीनस में चरखारीवाली सरकार और आस पास थोड़े से घुड़सवार, इनके पीछे परिचारिकाओं के रथ और सामान की बैल गाड़ियाँ तथा पैदल बन्दूक़ वाले। जब ये लोग क़िले के नीचे आगए, मुसाहिबजू ने ऊँची बुर्ज की ओर देखा। उन्होंने कल्पना करली कि राजा बैठे हैं। घोड़े पर से उतर पड़े। राजा को बहुत झुक-कर मुजरा किया। उनके सब संगी थम गए, और उन्होंने भी प्रणाम किया। फिर मुसाहिबजू फुर्ती के साथ घोड़े पर सवार होकर बढ़ दिए। राजा ने यह सब भखीभाँति देख लिया। राजा के नेत्र सजल हो गए और गला भर आया। कोतवाल से बोले 'देश-निकाले का दंड तो पूरा हो ही गया है?'

कोतवाल समझ गया कि राजा पसीज गए। उसने विनती की—'अन्नदाता, ऐसे सरदार के लिए यह बहुत काफ़ी है।'

राजा—'इस सरदार ने मेरे लिए अनेक बार अपनी जान जोखिम में डाली। इसका आज यह हाल देख कर दया आती है।'

कोतवाल—'ठीक मर्जी हुई। रण में ऐसा अड़नेवाला ठाकुर कठिनाई से मिलेगा।'

राजा—'कोतवाल दण्ड तो मिल चुका, अब आगे बात नहीं बढ़ाना चाहता हूं।'

कोतवाल—'हुकुम हो। अन्नदाता, इसी क्षण पालन किया जावेगा।'

राजाने आज्ञा दी—'तुम मुसाहिबजू से कह दो कि दण्ड की मर्यादा पूरी हो गई। भरतगढ़ लौट जाओ, तुरन्त जाओ।'

कोतवाल दौड़ता हुआ क़िले के बाहर हुआ। मुसाहिबजू के पास हाँफता हाँफता पहुंचा। वे सब ठहर गए। मुसाहिबजू ने अधीरता के साथ पूछा—'क्या है कोतवाल साहब? गंगाजली की याद है?'

कोतवाल ने दम लेकर उत्तर दिया—'तभी तो सेवामें हाज़िर हुआ हूं। आप भरतगढ़ लौट जावें। महाराज ने क्षमा प्रदान करदी है।'

'मुझको नहीं चाहिए, मुसाहिबजू ने दृढ़ता के साथ कहा—'अब हम लोगों को बिना खूँटे खुटके चले जाने दीजिए लौटेंगे नहीं।'

कोतवाल—'आपने महाराज की आज्ञा का कभी निरादर नहीं किया।'

मुसाहिबजू—'यदि महाराज की एक आज्ञा दूसरी के विपरीत हो, तो मुझको जो पसन्द आवेगी, उसको मानूँगा।'

कोतवाल—'ऐसा स्वामी नहीं मिलेगा।'

मुसाहिबजू—'और ऐसे सेवक तो गली-गली मारे-मारे फिरते हैं।'

कोतवाल—'इतना हट नहीं करना चाहिए।'

मुसाहिबजू—'कहदेना कि उनके जान मैं और मेरी सब सेना मर गई।'

— २१ —

राजा को सन्देह था, शायद कोतवाल के कहने से मुसाहिबजू न लौटें, इसलिए उन्होंने रामसिंह को बुला भेजा। नगर-भर में पहले तो यह ख़बर फैली कि मुसाहिबजू को स्वजनों सहित देश-निकाले की सज़ा दी गई है, फिर इस समाचार के भी फैलने में देर न लगी कि राजा उनको लौटाने का प्रयत्न कर रहे हैं। नगर के कुछ साहूकार शीघ्र इकट्ठे हुए। उनमें कुञ्जी भी था। वे सब नंगे पैर मुसाहिबजू को लौटाने के लिए चल पड़े।

रामसिंह राजा के सामने आया। मुजरा करके हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। राजा ने कहा—'कुँवरसाहब, तुम साथ में नहीं गए?'

रामसिंह को अपने बुलाए जाने का कारण मालूम था। बोला—'अन्नदाता की आज्ञा बिना तो मैं मर भी नहीं सकता।'

राजा ने अनुरोध किया—'तुम किसी तरह मुसाहिबजू को लौटा लाओ। मैंने चरखारीवाली बेटी को साथ में जाने के लिए नहीं कहा था। और, जो-कुछ होना था, हो चुका। मेरी आज्ञा का पालन हो गया। मुसाहिबजू के चले जाने से सारी बस्ती सूनी जान पड़ने लगी है।'

रामसिंह ने ज़रा छहराने के लिए कहा—'महाराज, वह थोड़े दिन के लिए केरुआ जा रहे हैं, इसीलिए मैं साथ में नहीं गया। केरुआ से जब बुलाए जावेंगे, आ जावेंगे।'

राजा गम्भीर होकर बोले-'इस बीच में यदि ग्वालियरवालों से ठन गई तो?'

रामसिंह ने उत्तर दिया—'महाराज, केरुआ बहुत दूर नहीं है।'

राजा ने ज़रा कुपित स्वर में कहा—'बातें बना रहे हो; समय निकला जा रहा है, तुम्हारे बसका है या स्वयं कुछ उपाय करूँ ?'

राजा की उतावली की सीमा का उल्लङ्घन न करने के निर्णय से प्रेरित होकर रामसिंह बोला—'अन्नदाता, मैं अभी प्रयत्न करता हूँ।'

'प्रयत्न ही नहीं', राजा ने आग्रह के साथ कहा—'जैसे बने, तैसे लौटाओ। तेज़ घोड़े पर बैठकर जाओ। वे दूर निकल गए होंगे।'

'मैं अभी जाता हूँ।' रामसिंह बोला—'नगर के साहूकार भी मनाने गए हैं। मुसाहिबजू को मेरे पहुंचने तक वे लोग अवश्य थाम लेंगे।'

राजा ने ज़रा चैन की साँस लेकर कहा—'अच्छा हुआ वे लोग भी गए, अन्यथा मैं उनको किसी समय देखता, क्योंकि उनकी फ़रियाद पूरी-की-पूरी सच्ची न थी।'

रामसिंह क़िले से बाहर आया। अस्तबल से घोड़ा चुनने-निकालने में उसको कुछ विलम्ब हुआ।

मुसाहिबजू अपने समाज सहित बहुत धीरे-धीरे जा रहे थे, इसलिए साहूकार समुदाय की पुकार 'ठहरिएगा, ठहरिएगा' उन्होंने सुन ली और वे थम गए। सबसे पहिले कुञ्जी को लल्ली मिला। किसी पूर्व निश्चय के अनुसार कुञ्जी ने लल्ली से ऊँचे स्वर में कहा—'माते, अपने गहने लिए जाओ, वे मेरे नहीं हैं।'

मुसाहिबजू जरा रूखे स्वर में बोले—'वे गहने लल्ली के नहीं हैं; तुम्हारे हैं। राजा निर्णय कर चुके हैं।'

लल्ली ने भी हाँ-में-हाँ मिलाई—'मेरे नहीं हैं, सेठ!' और उसने लम्बी साँस ली।

एक साहूकार बोला—'कुछ भी हो। आप बिना यह नगर साधनहीन हो जावेगा। राजा वापस बुला रहे हैं। हम लोगों की भी प्रार्थना है। थोड़े-से जेवरों की कोई बात नहीं। बहुत कमा-खा लेंगे। हम लोगों के यहाँ कौन सोने-चाँदी की खेती होती है, इन्हीं लोगों से तो चील-झपट्टा करते हैं।'

इस प्रार्थना में व्यंग, आरोप और सत्य का सम्मिश्रण मुसाहिबजू के कोप का कारण हुआ; परन्तु अपने पीछे चरखारी-वाली सरकार की पीनिस पर दृष्टिपात करते ही उनको कुछ लज्जा मालूम हुई। उन्होंने कोप को निरुद्ध करके कहा—'इस तरह राजा भी बात नहीं करते, जिस तरह आपलोग कह लेते हो। कुञ्जी के समाधान करने पर भी आपलोग साफ़ बात नहीं कहते।'

उक्त साहूकार बोला—'राजा, यदि आप नहीं लौटेंगे, तो हमलोग व्यर्थ ही किसी आपत्ति में खप जावेंगे। हमलोग भी राज्य को छोड़ देंगे।'

'कहां जाओगे?' मुसाहिबजू ने पूछा।

एक दूसरे साहूकार ने उत्तर दिया—'जहां हमलोगों की रक्षा की पूरी व्यवस्था होगी।'

मुसाहिबजू ने क़िले की ओर दृष्टिपात करके दूसरा प्रश्न किया—'यह व्यवस्था कहाँ है?'

उक्त साहूकार ने समझा मुसाहिबजू जरा ढीले पड़ रहे हैं, उत्तर दिया—'ग्वालियर में, अङ्गरेजों के राज्य में।'

लल्ली बीच में बोल पड़ा—'हाँ, जहाँ आराम के साथ एक के निन्नानवे बना सको।'

एक तीसरे साहूकार ने जरा धीरे-से कहा—'जहाँ लल्ली माते न हों।'

इस व्यंग को मुसाहिबजू ने नहीं सुना—चरखारीवाली सरकार ने सुन लिया। वह जोर से खांसीं। मुसाहिबजू ने उस खांसी के संकेत को अवगत कर लिया। बोले—'रास्ता छोड़ो। सन्ध्या हो रही है, दूर जाना है।'

बनियों ने फिर आग्रह किया; परन्तु उनके आग्रह में आत्म-रक्षा का आभास अधिक था और सहानुभूति का कम। एक और सेठ ने अपने कन्धे से कन्धा मिलाए हुए दूसरे सेठ से धीरे से कहा—'घर चलो और शीघ्र दतिया छोड़ने की तैयारी करो, नहीं तो राजा हम सबको खा जायँगे और ये केरुआ से बैठे-बैठे ही हमको लूटते रहेंगे।'

जो साहूकार मुसाहिबजू के घोड़े के पास खड़ा था उसने विनय की—'राजा, हमलोगों का धर्म था कि आप से लौट चलने के लिए प्रार्थना करते सो निभा लिया। अब हमलोग भी दतिया छोड़ देंगे।'

मुसाहिबजू ने पीछे मुड़कर देखा, कोई तेजी के साथ घोड़ा दौड़ाए आ रहा है। चिल्लाकर बोले—'रमू देखो, यह कौन है।'

रमू ने अपनी बन्दूक संभाली; परन्तु कन्धे से जोड़ी नहीं। बोला—'अन्नदाता, एक ही सवार है।'

मुसाहिबजू ने अपने सब संगियों को सुनाने के लिए ज़ोर के साथ कहा—'इसकी और सुनलो। देखें, क्या कहता है। फिर सपाटे के साथ चल दो।'

सबलोग इसी घुड़सवार की ओर देखने लगे। थोड़े समय में रामसिंह आ पहुंचा। घोड़े से उतरकर उसने मुसाहिबजू के पैर छुए। बोला—'लौट चलिए।'

एक साहूकार ने कहा—'हमलोग भी बड़ी देर से बिनती कर रहे हैं।'

मुसाहिबजू—'क्यों लौटूं, कुँवर साहब?'

रामसिंह—'राजा की आज्ञा है।'

एक साहूकार—'और हमलोगों की प्रार्थना।'

मुसाहिबजू—'न तो राजा का मन हमारी तरफ़ से साफ़ हुआ है और न ये साहूकार वास्तव में चाहते हैं कि हम अपने दल सहित दतिया में रहें। इसलिए कुंवर साहब, अब हमारी यात्रा के लिए कुसमय न करो।'

साहूकार—'हम, राजा, बेमौत मरे। लुटे और कुटे।'

मुसाहिबजू—'देखो, इनलोगों ने अब तक वह टेक नहीं छोड़ी।'

साहूकार—'बड़ी देर से तो मना रहे हैं, कहें तो कलेजा चीरकर दिखलादें कि जो मन में है, वही बाहर है।'

मुसाहिबजू—'अपने घर लौट जाओ। किसी का कुछ खो जावेगा, तो लगाओगे मुसाहिबजू के आदमियों को।'

साहूकार क्षुब्ध हो गए। यहां तक आए ही क्यों, यह सोच कर मन में पछताए। परन्तु युग और परिस्थिति ने उनको

खुशामद में ढाल दिया था, इसलिए उनके अगुए ने कहा—'हम लोग तो बिना जीभ के पशु हैं। श्रीमान की छाया में बसते हैं। आप रूठ जावेंगे, तो भगवान भी रूठ जावेंगे। मन्दिरों में उधर ठाकुरजी हैं और इधर बाहर आप ठाकुरजी हैं।'

किन्तु कोई भी युग और परिस्थिति मानव-हृदय के अन्तस्तल की ज्वाला की प्रत्येक लौ को पूर्णतया विवश नहीं कर सकती; एक और साहूकार के मुंह से परवश और अवस्मात निकल गया—मान जाइये, हम लोग तो उनकी भी भोग-व्यारी हैं और आप की भी।'

इस वाक्य ने मुसाहिबजू के कलेजे में आगसी धधका दी। बोले—'रास्ता-छोड़ो। जायँगे। नहीं तो घोड़े से कुचल जाओगे।' अन्य साहूकारों ने उक्त साहूकार की भर्त्सना की। रामसिंह ने मुसाहिबजू के घोड़े की लगाम दूसरे हाथ से पकड़ ली।

मुसाहिबजू ने क्रुद्ध स्वर में कहा-'हटो, नहीं तो पछताओगे।'

रामसिंह—'पछताना तो हम दोनों को ही पड़ेगा। जानते हैं आप, क्या समस्या सामने है ?'

मुसाहिबजू उतावले होकर बोले—'समस्या हमारा क्या करेगी ? कौनसी समस्या है ?'

रामसिंह—'सिंधिया की सेना रोनीजा की गढ़ी तक आगई है। अभी-अभी समाचार मिला है।'

मुसाहिबजू—'तो क्या करूँ ?'

रामसिंह ने लगाम छोड़ कर कहा—'भाग जाओ, जिसमें संसार-भर में नाम हो।'

'क्या?'—मुसाहिबजू चकित होकर बोले।

रामसिंह ने तुरन्त कहा—'दुनिया-भर कहेगी कि .....'

'क्या ?' - मुसाहिबजू ने टोका।

रामसिंह कहता गया—'और राजा कहेंगे। दतिया के वन-पर्वत चिल्लाकर कहेंगे।'

'क्या कहेंगे ?' मुसाहिबजू ने व्यग्र स्वर में प्रश्न किया।

रामसिंह ने बेधड़क उत्तर दिया—'यह कहेंगे कि आपके सिपाही डाका डालने में प्रवीण और आप डरपोकों में सबसे आगे .....।'

मुसाहिबजू को पसीना आगया रुँधे कण्ठ से बोले—'क्या कहा कुँवर साहब ?'

'मैंने ठीक कहा'—रामसिंह ने कहा—'संसार-भर कहेगा कि आपने ठीक समय पीठ दिखाई और आप कायर हैं।'

मुसाहिबजू बोले—'न मैं कायर हूँ और न मेरे सिपाही डाकू।'

रामसिंह—'तब तुरन्त लौट चलिए और सिन्धिया की सेना का मुक़ाबिला करने की तैयारी करिए।'

मुसाहिबजू—'चलो, कुँवर साहब ! युद्ध में प्राण देना केरुआ जाने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है।'

इसके बाद मुसाहिबजू अपने दल-सहित लौट पड़े; परन्तु भरतगढ़ न गए। आदे के बाग में, जो दतिया नगर से बाहर है, जा ठहरे। उन्होंने अपना प्रण घोषित किया—'दतिया के ऊपर चढ़ आनेवाले शत्रु को परास्त करके यदि जीवित रहे, तो केरुआ चले-जावेंगे; परन्तु परित्यक्त भरतगढ़ में पैर न रक्खेंगे।'

- २२ -

रामसिंह ने राजा को सब बात कह सुनाई और प्रण से मुसाहिबजू को डिगाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। राजा दीवान को लेकर आदे के बाग में बिना विलम्ब पहुंचे। राजा के आने का समाचार सुनकर मुसाहिबजू तुरन्त अगवानी के लिये बढ़ आए। हाथ जोड़कर नीचा सिर किए राजा के सामने खड़े हो गए। राजा ने बिना आसन लिये ही स्नेह के स्वर में कहा-'मुसाहिबजू, मैं तुम्हारा राजा हूँ न ?' मुसाहिबजू—'राजा, अन्नदाता और स्वामी !'

राजा—'मेरी आज्ञा का उल्लंघन तो न करोगे ?'

मुसाहिबजू—'कभी नहीं।'

राजा—'भरतगढ़ जाओ और यथावत अपना काम करो। जब दतिया पर कोई धावा बोले, तब डटकर उसका मुक़ाबिला करो।'

मुसाहिबजू का गला भर आया। चुप रहे।

राजा ने कहा—'क्या मैं हाथ पकड़ कर भरतगढ़ ले चलूं?'

मुसाहिबजू ने गद्-गद् स्वर में उत्तर दिया-'जहाँ महाराज की आज्ञा होगी, वहीं जाऊँगा। हुकुम हो, तो रात-भर यहीं ठहरा रहूँ। आज गरमी भी बहुत है।'

'नहीं' राजा ने दृढ़ता पूर्वक कहा—'भरतगढ़ लौट जाओ। गरमी-सरदी सब भरतगढ़ में ही बिताओ।'

मुसाहिबजू स्वीकार करते हुये बोले-'स्वामी के हठ के सामने सेवक का हठ नहीं चल सकता। अभी जाता हूँ।'

राजा ने अकेले में लेजाकर मुसाहिबजू से कहा—'देखो ज़माना नाज़ुक है। संभल कर चलो और सिपाहियों की बागडोर हाथ में रक्खो।'

मुसाहिबजू ने विनय की—'अन्नदाता, ऐसा ही होगा। मुझको कोई भी कायर न कह सकेगा।'

राजा—'तुम कायर नहीं हो।'

मुसाहिबजू—'थोड़ी देर पहिले रामसिंह बहुत बड़ी बात कह गए।'

राजा—'रामसिंह की परवाह मत करो। वह अपना ही है; परन्तु प्रजा की, बनियों की, रक्षा अवश्य करनी होगी।'

मुसाहिबजू—'महाराज, मैं वह सब माल लौटवा दूँगा।'

राजा को हँसी आगई। बोले—'मुसाहिबजू जो-कुछ उचित हो, करो। मुझको उस विषय में कुछ नहीं कहना है। केवल एक बात याद रखो;

'जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी;
सो नृप अवस नरक अधिकारी।'

• •

परिचय

छोटू नाई दतिया का रहने वाला था। जब मुझे मिला लगभग ८० वर्ष का था। उसने जीवन भर सिपाहगरी की थी। दतिया में बंकाजू कोतवाल के सिपाहियों में नौकर रहा था। दतिया में अनेक पुरातन प्रथाओं के विध्वंस के साथ इसकी सिपाहगरी खत्म हो गई। इस उपन्यास की घटना उसी की बतलाई हुई है। इस उपन्यास के दो नाम मुसाहिब दलीपसिंह और रामगिरि धंधेरा सच्चे हैं, शेष कल्पित हैं। उपन्यास की सब प्रमुख-घटनाएँ वास्तविक हैं। कोतवाल ने जिस प्रकार मुसाहिबजू से बन्दूक लेली थी वह घटना भी सही है। हमारा वर्तमान समय सवासौ वर्ष पहले की अवस्था का प्राकृतिक सिलसिला है। उस समय सामन्त युग की समाप्ति प्रारम्भ हो गई थी, अब उस समाप्तिका अवशिष्ट- मात्र है। उस समय उसमें कुछ सौष्ठव था — अब ?

— लेखक

शीघ्र ही प्रकाशित हो रहे हैं

श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा द्वारा प्रणीत

माधव जी सिंधिया

अत्यन्त उज्ज्वल और श्रेष्ठ चरित्र-चित्रण

ऐतिहासिक उपन्यास

मूल्य लगभग ४॥)

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, अभूतपूर्व, अति रोचक

सामाजिक रोमांस

अचल मेरा कोई

मूल्य ३॥)

छप रहा है -सामयिक एकांकी नाटक:—

काश्मीर का कांटा

मुद्रक—द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश', स्वाधीन प्रेस, झांसी।